हर घर

देश के प्रथम बालिका विद्यालय की संस्थापक, आधुनिक मराठी कविता की जननी

माता सावित्री की अमर कहानी

सविता वर्मा

देश के प्रथम बालिका विद्यालय की संस्थापक
आधुनिक मराठी कविता की जननी

माता सावित्री की अमर कहानी

सविता वर्मा

आईएसबीएन : 978-93-95044-90-5

© माता सावित्री फाउण्डेशन

चतुर्थ संस्करण 2025

मूल्यः ₹ 60

प्रकाशक
माता सावित्री फाउण्डेशन, 146 आवास-विकास कॉलोनी, गोंडा- 271002 (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन
बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उ.प्र. (रजि.)
356/340/835, राजगार्डेन कालोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017
मो. 9415941920, 8181819657

Email : baks.gpjakhmi@gmail.com

माता सावित्री फाउण्डेशन, गोण्डा के लिए बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उ.प्र. (रजि.) द्वारा लक्ष्मी ऑफसेट, लखनऊ से मुद्रित और प्रकाशित।

Mata Savitri ki Amar Kahani
Written By Savita Verma

देश के प्रथम बालिका विद्यालय की संस्थापक
आधुनिक मराठी कविता की जननी

माता सावित्री की अमर कहानी

"जाओ जाकर पढ़ो लिखो
मेहनती बनो ,
आत्मनिर्भर बनो
ज्ञान और धन एकत्र करो
अपना धन और समय
मंदिर और
पूजा पाठ में बर्बाद मत करो
ज्ञान के बिना सब खो जाता है
ज्ञान और धन के बिना हम
जानवर की तरह बन जाते हैं
इसीलिए खाली मत बैठो
जाओ जाकर शिक्षा लो"

– माता सावित्री बाई फुले

पूज्य माता
स्वर्गीय शांती देवीजी को

वे मुझ पर पत्थर और कीचड़ फेंकते रहे
मैं भारत की बेटियों को पढ़ाती गई...

सावित्रीबाई फुले

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोक तंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को-

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए
तथा **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी **इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

प्रकाशकीय

करुणा और प्रज्ञा के सागर तथागत गौतम बुद्ध, बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी तथा बहुजन समाज में जन्में संत–गुरुओं, महापुरुषों , भारत की प्रथम महिला शिक्षिका सामाजिक क्रांति की अग्रदूत माता सावित्रीबाई फुले को कोटि–कोटि नमन!

बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उत्तर प्रदेश (रजि.) प्रकाशन द्वारा प्रकाशित "माता सावित्री की अमर कहानी" की लेखक आदरणीया सविता वर्मा जी, वर्तमान में माता सावित्री फाउंडेशन गोंडा, की अध्यक्ष हैं। यह संगठन माता सावित्रीबाई फुले के जीवन की प्रेरणा से गांव–गांव जाकर, छोटे छोटे कैंप लगाकर बेटियों और महिलाओं को शिक्षा, समाज और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने का कार्य पिछले 5 से अधिक वर्षो से कर रहा है। लेखक श्रद्धेया सविता वर्मा जी एवं बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे मासिक पत्रिका के विशेष सहयोगी एवं वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.डी.के. वर्मा जी, उपनिदेशक, उद्यान, गृह जनपद अम्बेडकर नगर का इस पुस्तिका के प्रकाशन में सहयोग करने के लिए भूरि– भूरि सराहना एवं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

इस कार्य में बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे मासिक पत्रिका के संरक्षक इं.एन.के. गौतम जी (IES) अधीक्षण अभियंता, डॉ.आर.आर.जैसवार जी, प्रथम लोकपाल, लखनऊ, इं.के .के.लाल (से.नि.) उप–निदेशक, ट्रेनिंग एम्प्लॉयमेंट, लखनऊ, श्रद्धेय बी.एल. गौतम जी, श्रद्धेय नानक चंद्र जी, प्रेम चन्द्र जी का विशेष योगदान रहा है। रचना की प्रूफ रीडिंग डॉ.डी.के. वर्मा जी के द्वारा की गई है। इस पुस्तक का शब्दांकन प्रिय संदीप सुल्तानपुरी जी के द्वारा किया गया है। मैं सभी का हृदय से आभारी हूं। इन सभी महानुभावों के विशेष सहयोग से ही यह कृति समाज के बुद्धिजीवी पाठकों तक पहुंचने में सफल हो सकी है। पुस्तिका समाज को दिशा देने में कहां तक सफल होती है इस बात का निर्णय सुधी पाठकगण करेंगे। सम्मानित पाठकों की प्रतिक्रिया का प्रकाशन में स्वागत और सम्मान है।

भवतु सब्ब मंगलम!

ज्ञानप्रकाश जख्मी
प्रकाशक
मो. 81818 19657

दो शब्द

अदम्य साहस, उत्कट जिजीविषा, प्रबल इच्छाशक्ति और कमजोरों के प्रति असीम करुणा की प्रतिमूर्ति माता सावित्री हमारे देश की अमूल्य धरोहर हैं, परंतु उन्हें वह स्थान नहीं मिला जो होना चाहिए था। जो सशक्त हैं ,मजबूत हैं वह भी बंधे हुए थे संस्कार, धर्म, परंपरा और अनिष्ट के भय से। ऐसे में कमजोर और खेतिहर समाज की बात ही क्या जहां परंपरा ही नहीं थी, पठन पाठन की? ऐसे समाज में जन्म लेकर माता सावित्री ने धर्म और परंपरा की बेड़ियों को तोड़ते हुए एक एक कर 18 विद्यालय खोले बेटियों के लिए धर्म के गढ़ पूना में जहां पेशवा बैठते थे। उस समय जबकि देवता की बात न मानना किसी अपराध से कम नहीं माना जाता था कमोबेश आज भी बहुजन समाज की यही स्थिति है 21 वीं सदी में। इसे हम देवालयों में विभिन्न अवसरों पर माताओं बहिनों की लंबी लाइन के रूप में देख और समझ सकते हैं। इन सबके होते हुए भी उन्होंने विद्यालय खोले। बेटियों को मार्ग दिखाया देवालयों की जगह विद्यालय का। परंतु संस्कार और पाशविक विद्वता की जकड़न इतनी प्रबल थी उस समय, कि माता पिता अपनी ही बेटियों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजने के लिए तैयार ही नहीं होते थे। माता जी से पहले स्कॉटिश मिशनरी ने बेटियों के लिए स्कूल खोले थे। इसका भी विरोध हुआ था। स्कॉटिश मिशनरी विदेशी

थे अतः अंग्रेज सरकार ने सुरक्षा को देखते हुए यह नियम बना रखा था कि इन विद्यालयों में प्रवेश के लिए कलेक्टर की अनुमति आवश्यक है। इन परिस्थितियों में माता जी ने विद्यालय खोले और बेटियों को पढ़ाया बिना किसी भेदभाव के। इसीलिए माता सावित्री को आधुनिक भारत में शिक्षा की जनक होने का सम्मान प्राप्त है। माता सावित्री के ऊपर लेखन का आज भी अभाव है। ऐसे में सविता वर्मा जी की लेखनी की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। आशा है माता सावित्री के ऊपर लिखी इस पुस्तिका का तीसरा संस्करण समाज के मार्गदर्शन में सफल होगा।

डा डी के वर्मा
अंबेडकर नगर

प्रस्तावना

हमारे देश के धार्मिक कानून जो सभी हिंदू धर्म ग्रंथों में वर्णित हैं हमारी विषमतावादी व्यवस्था की आन बान शान और पहचान माने गए हैं इसे हम वर्ण व्यवस्था के नाम से जानते और मानते हैं तदनुसार समाज में चार वर्ण हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। अपने वर्ण के अनुसार इन सभी का कार्य निर्धारित किया गया था। वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण सबसे ऊंचे पायदान पर आसीन थे। पठन पाठन, यज्ञ पुरोहित का कार्य करना और करवाना इनका कार्य निर्धारित किया गया था। परंपरागत रूप से यह संवर्ग ही राजा का सलाहकार भी होता था। क्षत्रिय दूसरे पायदान पर आते हैं। इस वर्ण का कार्य ही था पढ़ना, शस्त्र धारण करना, शस्त्र विद्या सीखना और देश की रक्षा करना, यह शस्त्रोपजीवी वर्ग था। तीसरे नंबर पर वैश्य संवर्ग था जिसका कार्य था पढ़ना और वाणिज्य व्यापार करना। इसके बाद जो चौथा वर्ण हुआ करता था उसे शूद्र कहा जाता था, उसका कार्य था ऊपर के तीन वर्णों की सेवा करना। उसे कानूनन पढ़ने लिखने का अधिकार नहीं था। यही कानून हिंदू सभ्यता की पहिचान आज भी है। इस वर्ण व्यवस्था की स्थापना और रक्षा ही हिंदू राजाओं का पहला कर्तव्य हुआ करता था। यही कारण है कि आज भी हमारे देश के गांवों में ओबीसी जातियां खेती, पशुपालन, मछलीपालन और कृषि से अनुषंगी कार्यों में लगी हुई

है। शूद्रों का दूसरा वर्ग आज की तारीख में एससी एसटी के नाम से जाना जाता है यह अस्पृश्य वर्ग है। किसी का इससे छू जाना भी हमारे धर्म ग्रंथों में पाप माना गया है। जब इसके छू जाने से पाप हो जाता है तो क्या पढ़ना और क्या पढ़ाना अर्थात यह संवर्ग सदियों से पठन पाठन से कानून बनाकर वंचित कर दिया गया था। सदियों तक चली इस वंचना के चलते यह वर्ग पठन पाठन से अलग हो गया और पिछड़ेपन तथा सामाजिक सांस्कृतिक गरीबी का शिकार हो गया। शूद्रों की संख्या सबसे अधिक थी। आज भी वंचित, उपेक्षित वर्ग की संख्या सभी गांवों में कुल जनसंख्या का 85 प्रतिशत है। आज भी सभी गांवों में कुल आबादी का 60 प्रतिशत ओबीसी समाज है और 25 प्रतिशत एससीएसटी समाज है। इस सामाजिक वंचना को हमारे पुरखों ने देखा और अंग्रेज शासकों से अनुरोध कर यह कानून बनवाया कि देश की संपत्ति में इन वर्गों को हिस्सा दिया जाय। इस दिशा में पहला कार्य यह हो सकता था कि आबादी के अनुपात में इन्हें राजकीय सेवाओं में आरक्षण दिया जाता। इसकी शुरुआत वर्ष 1902 में शाहूजी महाराज ने कोल्हापुर से कर भी दी थी। शासन–प्रशासन व धन, धरती, व्यापार में भागीदारी (आरक्षण) प्राप्त करने पर ही यह समाज देश के अन्य विकसित समाजों जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आते हैं की बराबरी कर पायेगा।

हमारे पुरखों शाहूजी महाराज, माता सावित्रीबाई, राष्ट्रपिता ज्योतिराव फूले और बाबा साहब डा भीम राव अंबेडकर के अथक प्रायासों से संविधान में कमजोरों के लिए राजकीय सेवाओं में आरक्षण (प्रतिनिधत्व) की व्यवस्था की गई। संविधान के स्तर से समाज के

पिछड़े वर्गों को राजकीय सेवाओं में 27 प्रतिशत और एससीएसटी समाज को 22.5 प्रतिशत आरक्षण दिया गया। यह व्यवस्था आज भी लागू है। यदि 100 अधिकारियों यां कर्मचारियों की भर्ती होती है चाहे वह अफसर हो या बाबू या चपरासी उसमें 27 अभ्यर्थी ओबीसी समाज से और 22.5 प्रतिशत अभ्यर्थी एससीएसटी समाज से लिए जाने होते हैं चाहे उन्होंने कितने भी कम अंक क्यों न पाए हों? यह तथ्य थोड़ा अजीब लग सकता है। परंतु यह इसलिए है कि विज्ञापित पद के लिए अनिवार्य योग्यता तो वह धारित ही करता है, तब ही तो उसे परीक्षा या चयन प्रक्रिया में स्थान मिला। जो अनिवार्य योग्यता विज्ञापित पद के लिए विहित की गई है उसे वह धारित करता है। अतः यदि प्रतियोगी परीक्षा में उसे शून्य अंक भी प्राप्त होते हैं तो भी उसे चयन सूची में स्थान मिलना चाहिए।

इस नियम के तहत हमें सबसे पहले बिना कोई आरक्षण देखे अनारक्षित या सामान्य सीटों के लिए सामान्य मेरिट लिस्ट बनानी चाहिए और सभी सामान्य सीटों पर ओवरऑल मेरिट के आधार पर भर्ती की जानी चाहिए। बिना किसी भेद भाव के बिना कोई जाति या संवर्ग को देखे हुए। सामान्य सीटों के भर जाने के बाद आरक्षित संवर्गों की मेरिट लिस्ट बनाई जानी चाहिए। अर्थात सामान्य मेरिट लिस्ट में अंतिम स्थान पर खड़े अभ्यर्थी से कम अंक से आरक्षित वर्ग की मेरिट लिस्ट प्रारंभ होनी चाहिए। इस सूची में केवल आरक्षित संवर्ग के अभ्यर्थी लिए जाने चाहिए।

उदाहरण के लिए यदि 100 सीटों पर भर्ती होनी है तो उसमें मोटा मोटा 50 सीटें आरक्षित होंगी और लगभग 50 सीटें अनारक्षित

राजकीय सेवाओं में आरक्षण के वर्तमान नियम (प्रति आरक्षण, गलत एवं अवैधानिक)

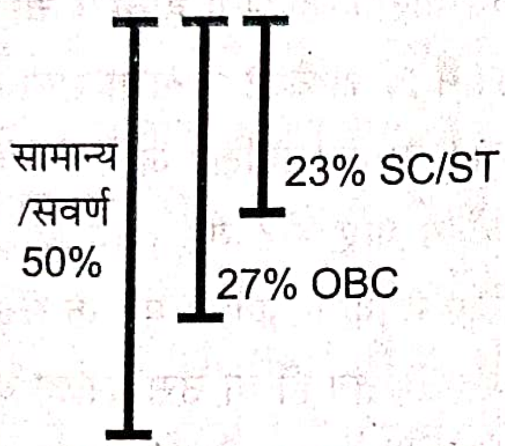

उदाहरण

कुल सीटे 11

कुल प्राप्तांक – 100

1-27% OBC सूची, 3 अभ्यर्थी

क्र.सं.	नाम	संवर्ग	प्राप्तांक
1.	अमर	OBC	98
2.	अजय	OBC	97
11.	अखिल	OBC	78

2-22.5% SC/ST सूची, 2 अभ्यर्थी

क्र.सं.	नाम	संवर्ग	प्राप्तांक
6.	रमेश	SC	93
7.	राजेश	SC	92

3-55.5% सामान्य सूची, 6 अभ्यर्थी

क्र.सं.	नाम	संवर्ग	प्राप्तांक
3.	मोहन	GEN	96
4.	मनोज	GEN	95
5.	दिनेश	GEN	94
9.	महेश	GEN	85
10.	नीरज	GEN	80
14.	विनय	GEN	75

ऐसे में OBC की उच्चतम मेरिट = 98

SC की उच्चतम मेरिट = 93

सामान्य की उच्चतम मेरिट = 96

कुल चयनित अभ्यर्थियों की संख्या

OBC = 3, SC = 2, GEN = 6

Total = 11

1- सर्व प्रथम OBC की 27 प्रतिशत सीटें भरी जाती है। OBC संवर्ग में अधिक अंक या गुणांक पाने वाले अभ्यर्थी लिए जाते हैं।

2-इसी तरह SC/ST की 22.5 प्रतिशत सीटें भरी जाती है। SC/ST संवर्ग में सर्वाधिक अंक या गुणांक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी लिए जाते हैं।

3-अब शेष 55.5 प्रतिशत सीटों पर केवल सवर्णो की भर्ती कर ली जाती है।

मेरिट लिस्ट उदाहरण

क्र.सं.	नाम	संवर्ग	प्राप्तांक
1.	अमर	OBC	98
2.	अजय	OBC	97
3.	मोहन	GEN	96
4.	मनोज	GEN	95
5.	दिनेश	GEN	94
6.	रमेश	SC	93
7.	राजेश	SC	92
8.	सुरेश	SC	90
9.	महेश	GEN	85
10.	नीरज	GEN	80
11.	अखिल	OBC	78
12.	अमन	OBC	77
13.	अनय	OBC	76
14.	विनय	GEN	75
15.	विनोद	GEN	74
16.	निवेश	GEN	73
17.	महीप	SC	71
18.	अदन	SC	68

यह स्थिति अक्सर समाचार पत्रों से प्राप्त होती है। प्रस्तुत उदाहरण में 2 OBC और 1 SC सीट पर सवर्णो ने कब्जा कर लिया। इस तरह से अमन ओ.बी.सी. (77) अंक और सुरेश एस.सी. (90) अंक प्राप्त कर प्रतियोगिता से बाहर हो और उससे कम विनय सा. (75) अंक प्राप्त कर चयनित हो गया।

राजकीय सेवाओं में आरक्षण के नियम (वैधानिक)

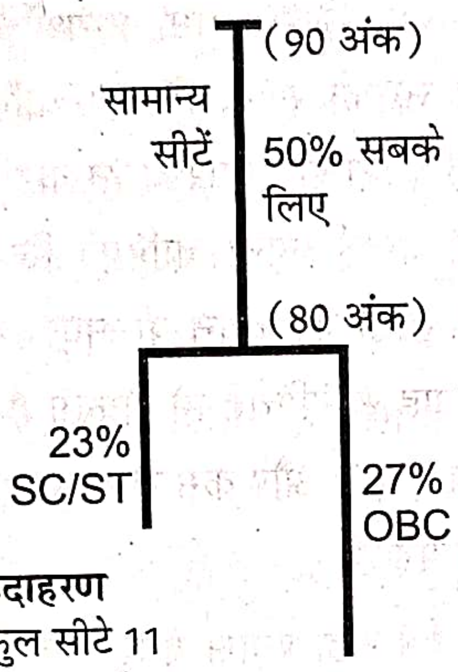

1- सर्व प्रथम अनारक्षित सीटें भी जानी चाहिए। सामान्य या Open मेरिट से, इसमें सभी शामिल हों। (ओ.बी.सी., एस.सी., एस.टी. मिलाकर)

2- इसके उपरान्त OBC तथा SC/ST की सीटें भरी जांय। इसमें वह अभ्यर्थी लिए जाते हैं, जिनके अंक सामान्य अनारक्षित सूची की **Cutt off** से कम हो यहाँ सामान्य श्रेणी भी लोवर कट् ऑफ 93 है।

उदाहरण

कुल सीटे 11

कुल प्राप्तांक - 100

1-सामान्य/अनारक्षित 6 सीटें 55.5%→ (क्र.सं. 1-6)

2- OBC i.e 27% 3 सीटें (क्र.सं. 11-13)

3- SC/ST i.e 22.5% 2 सीटें (क्र.सं. 7-8)

मेरिट लिस्ट उदाहरण

क्र.सं.	नाम	संवर्ग	प्राप्तांक
1.	अमर	OBC	98
2.	अजय	OBC	97
3.	मोहन	GEN	96
4.	मनोज	GEN	95
5.	दिनेश	GEN	94
6.	रमेश	SC	93
7.	राजेश	SC	92
8.	सुरेश	SC	90
9.	महेश	GEN	85
10.	नीरज	GEN	80
11.	अखिल	OBC	78
12.	अमन	OBC	77
13.	अनय	OBC	76
14.	विनय	GEN	75
15.	विनोद	GEN	74
16.	निवेश	GEN	73
17.	महीप	SC	71
18.	अदन	SC	68

कुल चयनित अभ्यर्थियों की संख्या-

OBC = 3
SC = 2
GEN = 6
Total = 11

होंगी। परीक्षा या अंक के आधार पर मेरिट बनाते समय सबसे पहले ओवरऑल मेरिट सूची बनाई जानी चाहिए। जिसमें सभी अभ्यर्थी चाहे वह किसी भी जाति वर्ग संवर्ग के हों उनको स्थान मिलना चाहिए। चूंकि यह सबके लिए है सामान्य सीट है। इन सीटों पर चयन कर लेने के बाद आरक्षित वर्ग की मेरिट सूची बनाई जानी चाहिए। जिससे आरक्षित वर्ग के तेज अभ्यर्थी सामान्य सीटों पर चयन पा सकें। यही संविधान की आत्मा भी है और इसी से यह सुनिश्चित हो सकता है कि आरक्षण का अनुपालन सुनिश्चित किया गया है और कम से कम 27 या 22.5 प्रतिशत सीटें आरक्षित वर्ग को दी गई हैं।

पर वास्तविकता इससे अलग है। यहां सबसे पहले आरक्षित संवर्ग की मेरिट लिस्ट बना ली जाती है और इसके आधार पर चयन कर लिया जाता है। और उसके बाद सामान्य या अनारक्षित सीटों के लिए मेरिट लिस्ट बनाई जाती है। इस सामान्य या अनारक्षित सूची में आरक्षित संवर्ग को स्थान नहीं मिलता है। इस सूची में कुछ आरक्षित संवर्ग के अभ्यर्थी स्थान पा जाते हैं जिन्होंने अपनी जाति में सामान्य जाति दर्शाया होता है। इस तरह से 50 प्रतिशत सीटें सुरक्षित हो जाती हैं सवर्ण समाज के लिए बिना किसी कानून के और आरक्षित संवर्ग सिमट कर रह जाता है मात्र अपने संवर्ग में। अर्थात् आरक्षण था पिछड़ों का और आरक्षण हो गया सवर्णों का। यहां यह सुनिश्चित कर लिया जाता है कि कम से कम 50 प्रतिशत सीटें सुरक्षित हो जाय सवर्ण समाज के लिए।

यह स्थिति है राजकीय सेवाओं में आरक्षण की, निजी क्षेत्र की बात तो छोड़ ही दिया जाय। पर हमारे समाज को इस धोखाधड़ी की

जानकारी नहीं है। होगी भी तो कैसे सारे अखबार न्यूज चैनल मीडिया कोई भी नहीं बोलता इस मुद्दे पर कहीं प्रकाशन नहीं होता। जानकारी कैसे होगी? हां जानकारी है उन बच्चों को जो तैयारी कर रहे हैं प्रतियोगी परीक्षाओं की उन्हें पता है परंतु उनकी बात उनके अपने ही घर में उनकी माताएं नहीं सुनतीं। ऐसा नहीं है कि वह मूर्ख हैं। उन्हें जानकारी नहीं है क्योंकि कोई नहीं बोलता। वैसे भी घर में बच्चों की बात अधिकांशतः नहीं मानी जाती। सवाल यह है कोई क्यों नहीं बोलता। उत्तर स्पष्ट है जिनके पास आवाज है, अखबार है, मीडिया है वह आरक्षण के धुर विरोधी हैं। वह तो वर्तमान बहुजन आरक्षण समाप्त करना चाहते हैं तो वह क्यों बोलेंगे? वह इतने चालाक हैं कि वह आलोचना भी नहीं करते कि कहीं आलोचना करने के कारण ही लोगों को यह पता न चल जाय कि आरक्षण की कोई व्यवस्था भी है।

परंतु इतना तय है कि जैसे भी हो समाज की माताओं बहनों को यह पता चल जाय कि जिनके कहने पर ही वह सारे मांगलिक कार्य करती हैं अपने बच्चों के सुखद भविष्य के लिए,वास्तव में वही दुश्मन हैं उनके बच्चों के भविष्य के और इन्ही के कारण बच्चो को नौकरी नहीं मिलेगी, तो एक बार पिता बर्दाश्त कर सकता है परंतु माता बर्दाश्त नहीं कर सकेगी। यदि यह प्रश्न किया जाए कि माता और पिता में सबसे अधिक प्यार कौन करता है बच्चों से! सबका एक ही जवाब होगा माता। भले एक प्रतिशत ही हो लेकिन माँ का प्यार अधिक होता है पिता से। माताओं को जानकारी नहीं है कि उनके बच्चों के आरक्षण का दुश्मन कौन है? यदि उन्हें पता चल जाय तो किसी को कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी और शोषण, पक्षपात्र व विषमता के दुर्ग को ढहाने में वे कारगर सहयोगी बन जाएंगी।

इस आरक्षण हिस्सेदारी की शुरुआत की थी बहुजन प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी के वंशज कोल्हापुर नरेश राजर्षि छत्रपति शाहूजी ने वर्ष 1902 में। उनका बनाया हुआ यह कानून इतना प्रभावशाली था कि भारतीय संविधान में वंचित वर्गों के आरक्षण का आधार बना। शाहू जी महाराज राजा थे उन्होंने आदेश कर दिया। आरक्षण लागू हो गया सरकारी नौकरियों में, परंतु आरक्षण और नौकरी तो बाद में आती है। हमारे समाज में महिलाओं, बहिनों, बेटियों के लिए शिक्षा का प्राविधान ही नहीं था सनातन धार्मिक कानून में। वह भी शाहूजी महाराज से 55 साल पहिले वर्ष 1848 में क्या हालत रही होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। माता सावित्रीबाई ने किन परिस्थितियों में पहला विद्यालय 01 जनवरी 1848 को खोला बेटियों के लिए और आगे बढ़कर एक एक कर विद्यालय खोलती चली गई। यह विद्यालय आज भी उपस्थित हैं पूना की धरती पर। तत्समय कितना विरोध हुआ उनका और कैसे विजय पाई उन्होंने अपने विरोधियों पर, इसी की कहानी है प्रस्तुत पुस्तिका में। आशा है पुस्तिका से देश के बहुसंख्यक वर्ग को देश की मुख्यधारा की राजनीति और धर्म का मर्म समझने में सहायक होगी और माताओं / बहनों के अंतर्मन को स्वयंचेता बनाने में प्रमुख भूमिका अदा करेगी।

रामेश्वर पवन
एडवोकेट / साहित्यकार
बहराइच
मो. 7985464094

लेखकीय

देश के प्रथम बालिका विद्यालय की संस्थापक आधुनिक मराठी कविता की जननी माता सावित्री की अमर कहानी का तीसरा संस्करण प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष और संतोष का अनुभव हो रहा है कि माता सावित्री के वंशज उनके दिखाए हुए रस्ते पर चलने लगे हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आजादी के पूर्व हमारी सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को शिक्षा का अधिकार ही नहीं था। उन्हें पिता की संपत्ति में भी अधिकार नहीं था। आज से लगभग 150 वर्ष पहले माता सावित्री ने यह समझ लिया था कि शिक्षा ही महिलाओं को सामाजिक अधिकार दिला सकती है। जैसी कि परंपरा थी माताजी भी पढ़ी लिखी नहीं थीं परन्तु प्रज्ञा और उत्साह इतना था कि टहनियों से अक्षरज्ञान किया वह भी विवाह के बाद, दोपहर में पति को भोजन कराते समय, खेत के किनारे पेड़ की छांव में। उसके बाद माताजी रुकी नहीं मात्र 18 वर्ष की उम्र से ही उन्होंने विद्यालय खोलने प्रारंभ कर दिए और एक एक कर 18 विद्यालय स्थापित किए।

कितना साहस, दृढ़ता और उत्कट इच्छाशक्ति थी उनके मन में। माता पिता के विरोध के बाद भी बिना किसी राजकीय सहायता के इतने विद्यालयों की स्थापना उनके व्यक्तित्व को आकाश की अनंत ऊंचाइयों तक ले जाता है। उनके इस कार्य का कड़ा विरोध हुआ, बाहर ही नहीं वरन अपने घर में भी विरोध हुआ। माता पिता ने निकाल दिया घर से। इस कार्य में उन्हें कितने संघर्षों को झेलना पड़ा इसी की गाथा है प्रस्तुत पुस्तिका में। प्रस्तुत पुस्तिका की रचना में प्रख्यात जनकवि बाबू राम चरण अनुरागी, एडवोकेट एन के वर्मा, श्री संचित लाल वर्मा जी, अमित वर्मा जी, विक्रम वर्मा जी बलराम यादव जी, कंचन रानी राव जी, ज्ञाना बौद्ध जी, प्रीती वर्मा जी और आंबेडकर नगर के डॉ डी के वर्मा साहब का विशेष योगदान है। वस्तुतः डॉ डी के वर्मा साहब के सहयोग के बिना इसका संकलन

और आलेखन संभव ही नहीं था। पाठकों की प्रतिक्रिया आलोचना और सुझाव का स्वागत और सम्मान है हमें इससे अपने कार्य को उत्कृष्ट बनाने में सहायता मिलेगी। हो सकता है पुस्तिका की भाषा शैली से या त्रुटिवश समाज के किसी वर्ग की भावनाओं को ठेस पहुंच जाय ।हम इसके लिए विशेष रूप से क्षमाप्रार्थी हैं। हमारा उद्देश्य किसी की भावनाओं को आहत करना नहीं है ।

सविता वर्मा
अध्यक्ष
माता सावित्री फाउंडेशन
जनपद गोंडा

संविधान :- पिछड़ों और दलितों कमजोरों को आरक्षण दिया जाय राजकीय सेवाओं में ।

विषय सूची

1.	शिक्षा की देवी : अट्ठारह विद्यालयों की स्थापना	23
2.	भारत की पहली अध्यापिका	25
3.	पहले विद्यालय की स्थापना : माता फ़ातिमा शेख की सहायता	27
4.	समाज का विरोध (पिता ने ही निकाल दिया घर से)	29
5.	शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना : बाबू उस्मान शेख	31
6.	देवी-देवताओं में आस्था नहीं	33
7.	पति की प्रेरणा से शिक्षा	34
8.	थॉमस क्लार्कसन का प्रभाव	36
9.	मामा परमानंद से प्रोत्साहन	38
10.	ब्राह्मणी काशीबाई को जीवनदान	39
11.	नवीन कविता की जननी	41
12.	गम्भीर विचारक माता सावित्री	43
13.	प्रथम महिला आक्रोशः मुक्ता साल्वे	45
14.	दलित विमुक्ति की पहली आवाज़	46
15.	जन्म और बचपन	48
16.	ईसाई पादरी से मुलाक़ात	50
17.	घर में बवंडर	52
18.	शिक्षा-दीक्षा : खेत के किनारे पेड़ की छाँव में	54
19.	दो महान विभूतियों का मिलन	56
20.	विरोध इतना कि दो वस्त्र लेकर पढ़ाने जातीं	58
21.	लहुजी साल्वेः सबसे बड़े सहयोगी	60
22.	पाखंडों का प्रबल विरोध	61
23.	निरक्षरता से लेखन तक	63

24.	विधवाओं का कल्याण : जीने का अधिकार दिलाया	66
25.	सबल प्रोत्साहन : सगुणाबाई क्षीरसागर	68
26.	जीवन का सबसे बड़ा दुख : पति की मृत्यु	70
27.	विरोध! हत्या का प्रयास	72
28.	महामारी से संघर्ष	74
29.	विद्याध्ययन और साहित्य सृजन	76
30.	महापरिनिर्वाणः एक युग का अंत	78

शिक्षा की देवी

अट्ठारह विद्यालयों की स्थापना

हम बहुत समय से सुनते आए हैं कि बुद्धि, ज्ञान और शिक्षा की देवी सरस्वती हैं, परंतु उन्होंने हमारे लिए क्या किया? यह कहीं स्पष्ट नहीं है। वैसे ही जैसे लक्ष्मी धन और सम्पत्ति की देवी मानी गई हैं। किया उन्होंने कुछ भी नहीं! हम 21वीं सदी में हैं। दो शताब्दी पहले 19वीं शताब्दी में महाराष्ट्र के सतारा जिले के नायगाँव में एक महिला ने जन्म लिया था, सावित्री नाम था उनका। वर्ण व्यवस्था के अनुसार निपट-निरक्षर। परंतु वह इतनी प्रज्ञावान थीं कि उन्होंने 13 साल की उम्र से अक्षर ज्ञान शुरू किया और 18 वर्ष की उम्र तक आते-आते एक-दो नहीं बल्कि 18 विद्यालय खोले। यह उन माताओं-बहनों के लिए उदाहरण और प्रेरणा हैं जो यह कहती हैं कि बड़े होने पर पढ़ाई कैसे करें? माता सावित्री ने अनेक पुस्तकें लिखीं जिसमें गद्य और पद्य दोनों शामिल हैं। उन्होंने *शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह* की स्थापना की, अनेकों महिलाओं को जीवनदान दिया। माता सावित्रीबाई फुले शिक्षा, करुणा, मानवता और प्रज्ञा की प्रतीक मानी गईं हैं। आज की तारीख में अग्रणी और प्रभु समाज कितनी भी डींगें हाँक ले परंतु देश की प्रथम अध्यापिका हैं माता सावित्रीबाई फुले, जो खेतिहर समाज में पैदा हुईं, जिसे पिछड़ा माना जाता है। इसे आज का इंटरनेट ही नहीं पूरा विश्व मानता है। यह हमारे लिए गम्भीर चिंतन का विषय है।

देश में आज भी अस्पृश्यता लगभग हर एक गाँव में मिल जाएगी। अस्पृश्यता, वर्ण व्यवस्था की अंतिम और चरम परिणति है, जो मानवता को स्वार्थअंधता, धूर्तता, संवेदनहीनता, घृणता, कटुता और अमानवीयता की अतल गहराइयों में ले जाती है। ऐसी दशा में शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता है? वह अस्पृश्य समाज से नहीं वरन ओबीसी समाज से आती थीं। वर्ण व्यवस्था और हिंदुओं के सारे धर्म ग्रंथों में ओबीसी समाज के लिए पढ़ने-लिखने पर प्रतिबंध था। विहित ही

नहीं था और उस समय की दंड प्रक्रिया संहिता *मनुस्मृति* साफ-साफ आदेश करती थी। पुरोहित बिना किसी भेदभाव के कहते थे कि शूद्र अर्थात ओबीसी/एससी तथा महिलाएँ पढ़ लेंगी तो अनर्थ हो जाएगा, अकाल पड़ जाएगा। तो पुरोहितों के आदेशों के अनुसार सावित्रीबाई स्कूल नहीं गई थीं। 9 साल की उम्र में विवाह हो गया। पति का व्यवसाय था, फूलों की खेती। दोपहर में जब वह पति के लिए भोजन लेकर जाती थीं, उस समय हीं उन्होंने पति से अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया और एक-एक कर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए शिक्षा जगत की अनंत ऊँचाईयों पर पहुँच कर एक-दो नहीं वरन 18 विद्यालय खोले। इन विद्यालयों के अवशेष पूना में आज भी उपस्थित हैं। इनका विवरण निम्नवत हैं-

क्र.	**स्थान का नाम**	**स्थापना दिनांक**
1.	भिड़ेवाड़ा, पुणे	01.01.1848
2.	हड़पसर, पुणे	01.08.1848
3.	ओट्टूर पुणे	05.12.1848
4.	अछूत बस्ती, पुणे	13.05.1849
5.	अल्हाट का घर, पुणे	01.07.1849
6.	नायगाँव, खंडाला सतारा	15.07.1849
7.	शिरवल, खंडाला सतारा	18.07.1849
8.	तलेगाँव, ढभढेरे, पूना	08.08.1849
9.	शिरवर, पुणे	08.08.1849
10.	सासवड़, पुणे	20.12.1849
11.	अंजीरवाड़ी, माजगाँव	03.03.1850
12.	करंजे, सतारा	06.03.1850
13.	भिंगार, पुणे	19.09.1850
14.	मुंढवे, पूना	01.12.1850
15.	अप्पा साहब चिपलुणकर की हवेली, पूना	03.07.1851
16.	रास्ता पेठ, पुणे	17.09.1851
17.	नाना पेठ, पुणे	01.12.1851
18.	बेताल पेठ, पुणे	15.03.1852

भारत की पहली अध्यापिका

यह हमारे देश के लिए सौभाग्य और गर्व की बात है कि देश की पहली अध्यापिका हमारे उस समाज से पैदा हुई जिसे कानूनन पढ़ने-लिखने का अधिकार ही नहीं था। यह उस अग्रणी और प्रभु समाज के मुँह पर करारा तमाचा है जो स्वयं को ब्रह्मा के मुख से पैदा मानकर जाति श्रेष्ठता के अभिमान में अपने ही भाइयों को अछूत मानता है। हमें मुस्लिम भाइयों से भय खाते हुए स्वदेशी-

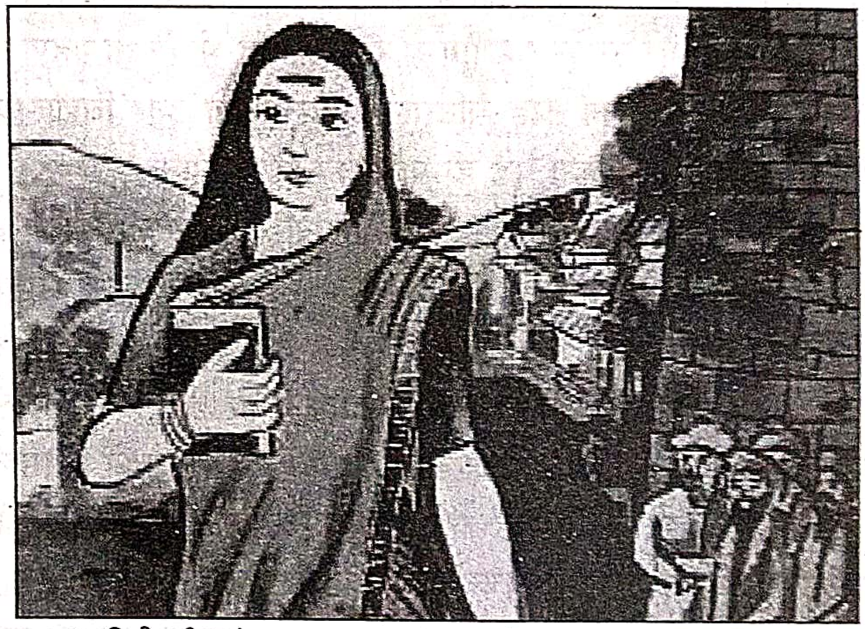

माता सावित्रीबाई फुले

स्वदेशी चिल्लाता है। यही स्वदेशी है। कितनी ऊर्जा होगी माता सावित्रीबाई में जिन्होंने 13 वर्ष की आयु में अक्षर-ज्ञान शुरू किया और चार साल में ही उन्होंने पहला विद्यालय खोल दिया। वर्ष 1848 में मात्र 17 वर्ष की उम्र में। उनके इस कार्य में माता फ़ातिमा शेख ने बहुत सहयोग किया। माता फ़ातिमा सावित्रीबाई के साथ पढ़ी थीं और उन्हीं की तरह ही प्रज्ञावान थीं एवं सामाजिक चिंतन करती थीं। वह भी उन चीजों को देख रहीं थीं, जिन्हें हम 21वीं सदी के इंटरनेट के युग

में भी नहीं देख पाते। उन्होंने अपने समाज की इस विडम्बना को समझा और महात्मा ज्योतिराव और माता सावित्रीबाई के साथ कंधे से कंधा मिलाते हुए एक-एक कर 18 विद्यालय खोले।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ कलम उस समाज के हाथ में थी जो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक और चारित्रिक रूप से पतित व गिरा हुआ था। उस समाज ने कानून बना रखा था कि केवल वह ही श्रेष्ठ है। बाकि सब उसके गुलाम व नौकर हैं। ऐसे में निश्चित रूप से यदि कोई व्यक्ति इस दिशा में आगे बढ़ा होगा तो उसे रबर से मिटा दिया गया होगा। जैसे कबीरदास का ब्राह्मणी विधवा के गर्भ से पैदा होना और उनके गुरु रामानंद का भी ब्राह्मण कुल का होना साथ ही घर की सीढ़ियों से सम्बंधित घटना जिसमें उन्हें अनजाने में गुरु-शिष्य मान लिया गया था। यह तो अंग्रेज सरकार की देन थी कि वह उस समय सत्ता में थे। उनके सत्ता में रहने के कारण ही ज्योतिराव फुले पढ़ाई कर सके और उनके सहयोग से सावित्रीबाई भी शिक्षा ग्रहण कर सकीं। यदि अंग्रेज न होते आज की तरह मदिरालय खुले रहते और विद्यालय बंद कर दिए जाते साथ ही सबको बिना पढ़े ही पास कर दिया जाता।

फुले दम्पति के विद्यालय में कलेक्टर के सिफारिशी-पत्र की आवश्यकता नहीं थी। सीधे प्रवेश मिलता था। प्रवेश मिलने की बात बेमानी है। उस समय कोई भी यहाँ तक कि पुरोहित समाज भी अपनी बेटियों को पढ़ने नहीं देता था। बहुत मुश्किल और काफी प्रयास करने पर माता-पिता तैयार होते थे। विद्यालय समय के बाद माता सावित्रीबाई अनेक मोहल्लों में जाकर अभिभावकों से मिलतीं, उन्हें समझातीं और प्रेरित करतीं कि वह बेटियों को विद्यालय भेजें। सावित्रीबाई का प्रयास था कि तो किसी तरह से बच्चों को विद्यालय लाया जाए। अब सोचें कि अगर कलेक्टर की चिट्ठी लाने को कहा दिया जाए, मतलब काम खत्म, स्कूल बंद। इसी कारण 1932 का *स्कॉटिश मिशनरी स्कूल* बंद हो गया था। जिसमें बहुत मुश्किल से सगुणाबाई क्षीरसागर ने कुछ समय शिक्षा पाकर अक्षरज्ञान सीखा था।

पहले विद्यालय की स्थापना : माता फ़ातिमा शेख की सहायता

वर्ण व्यवस्था और धर्मग्रंथों की धार्मिक बेड़ियों को तोड़ते हुए माता सावित्री के द्वारा अपनी प्रमुख सहयोगी माता फ़ातिमा शेख की सहायता से 14 जनवरी, 1848 को *पूना के बुधवार पेठ (बाजार) में भिड़े हवेली* में देश के प्रथम बालिका स्कूल की स्थापना की गई। देश के शैक्षिक इतिहास में यह पहला मील का पत्थर था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सारे धर्मग्रंथ और पुरोहित समाज एक सुर से पढ़ाई का विरोध करता था। इतना विरोध करता था कि उसने बाकायदा

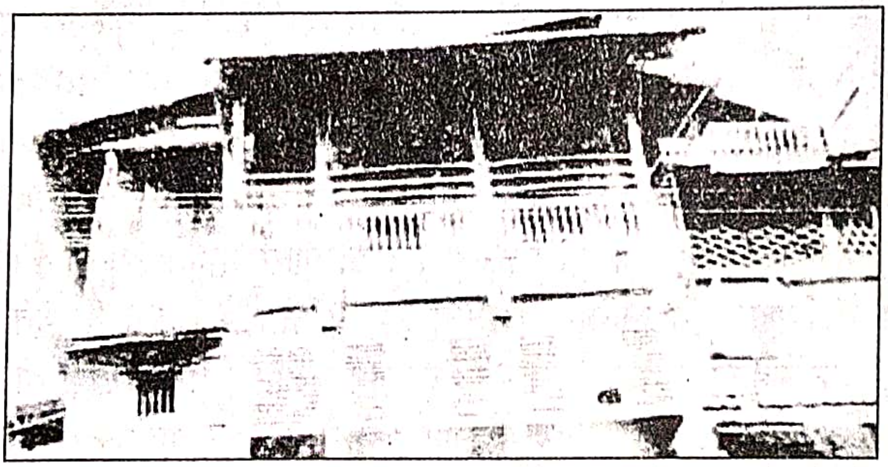

बुधवार पेठ में तात्यासाहब का वह मकान जहाँ फुले दम्पति ने लड़कियों की पहली पाठशाला शुरू की थी।

नियम और कानून बना रखे थे कि शिक्षा केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पुरुष वर्ग के लिए ही विहित है। अर्थात शेष लोग इनके नौकर और गुलाम हैं। वर्ण व्यवस्था साफ-साफ कहती है कि सभी नागरिक ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के नौकर और गुलाम हैं। जब कानूनन पढ़ने का अधिकार ही नहीं था तो मालिक जो कहें वही ठीक है। क्या विरोध या तर्क-वितर्क?

ऐसी परिस्थितियों में माता सावित्रीबाई ने पुरोहितों व आतताई वर्ण व्यवस्था

को नकार दिया और खुलेआम बताया कि हमें भी अधिकार है। हम नौकर और किसी के गुलाम नहीं हैं। माता फ़ातिमा शेख ने आगे बढ़कर सावित्रीबाई का साथ दिया और विद्यालय चल पड़ा। कितनी मुश्किलें आई होंगी यह विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आज 21वीं सदी में जब मदिरालय खुले रहते हैं, चुनाव होते रहते हैं और विद्यालय बंद कर दिए जाते हैं। दो सौ साल पहले क्या हाल रहा होगा? निश्चित रूप से विदेशी सत्ता की कानून व्यवस्था थी, जिसमें यह विद्यालय खुल सका। इसके पहले वर्ष 1932 में बालिका विद्यालय खोले जाने का प्रयास हुआ था और *स्कॉटिश मिशन* के द्वारा वह खोला भी गया। इस विद्यालय का इतना विरोध किया गया कि इसमें प्रवेश के लिए सुरक्षा की दृष्टि से जिलाधिकारी का पत्र अनिवार्य कर दिया गया था। कारण साफ है कि सत्तारूढ़ पुरोहितों ने आसमान सिर पर उठा लिया था। धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। वैसे ही जैसे *साइमन कमीशन* के विरोध में सिर पर आसमान उठाया था।

हमारे विधान में यह कौन होते हैं देने विचार अपने मन का।
...भारत में अपने विधान का हम स्वयं बनाएँगे सारा।।

अपराधी प्रवृत्ति के पुरोहितों के आक्रमण कर देने के डर से प्रशासन ने बालिकाओं और उनके परिवारों को विशेष सुरक्षा प्रदान की। अतः इसमें प्रवेश के लिए जिलाधिकारी का सिफारिशी पत्र आवश्यक बना दिया गया। बेटियों को स्कूल भेजने के लिए एक तो कोई तैयार ही नहीं था। वहीं यह नियम बना दिया गया कि कलेक्टर का पत्र आवश्यक है। परिणाम पहले से ही निश्चित था। विद्यालय में शिक्षक थे लेकिन विद्यार्थी नहीं। जिन्होंने बहुत हिम्मत की, उन्हें कलेक्टर तक पहुँचाता कौन? भगाने के लिए पुरोहित बाहर खड़े ही थे। बेचारे स्कॉटलैंड के मिशनरी लोग जिन माँ-बाप को तैयार कर कलेक्टर से पत्र दिलवा देते उसी के सहारे स्कूल चला और एक वर्ष पूरा होने के पहले ही विद्यालय बंद हो गया। आखिर कहाँ तक वह कलेक्टर के सहारे विद्यालय चला पाते। अंततः विद्यालय बंद हो गया।

परंतु इस बार किसी मिशनरी ने नहीं वरन माता सावित्रीबाई ने बालिका विद्यालय खोला था। इसमें प्रवेश लेने वाली बालिकाएँ थीं। 1. सोनू पवार 2. माधवी थाते 3. सुमति मोकाशी 4. दुर्गा देशमुख 5. जानी कार्डिले और 6. अन्नपूर्णा जोशी।

अध्यापिका थीं माता सावित्री बाई फुले और माता फ़ातिमा शेख।

समाज का विरोध
(पिता ने ही निकाल दिया घर से)

यह हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्धांत की तरह है। लीक से हट कर कार्य करने वाले को समाज का कितना विरोध झेलना पड़ता है? परंतु हमारा समाज और समाज का गुरु पुरोहित इतना भी सरल नहीं था या है। वह स्वयं विरोध नहीं करता था। वह हमारे कमजोर हिस्से को हमारे ही विरुद्ध इतना भड़काता है कि वही विरोध करता है हमारा। इसलिए समाज में सामाजिक शिक्षा कितनी

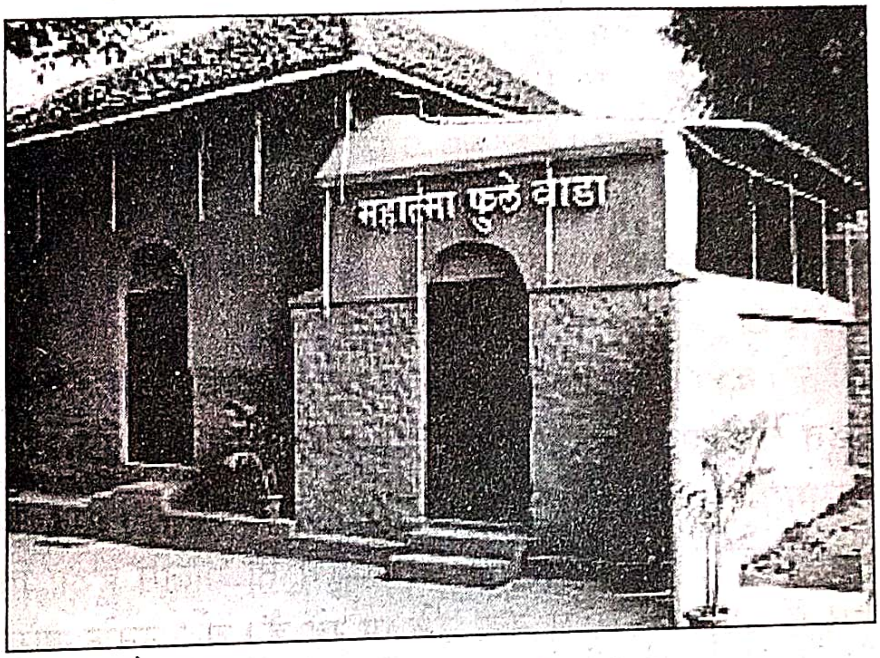

महात्मा फुले का घर

आवश्यक है, इसका अंदाजा हम लगा सकते हैं। माता सावित्रीबाई को समाज का इतना विरोध झेलना पड़ा कि उनके सास-ससुर अर्थात ज्योतिराव के माता-पिता ने ही फुले दम्पति को घर से निकाल दिया यह कहकर कि तुम लोग विधि-विरुद्ध कार्य कर रहे हो। स्कूल बंद करो नहीं तो निकल जाओ घर से। उन्होंने अनुरोध किया कि पिताजी हम कोई चोरी-डकैती तो कर नहीं रहे हैं।

बच्चों को पढ़ा ही तो रहे हैं।

इसमें गलत क्या है? परंतु पुरोहितों ने इतना भर दिया था और भड़का दिया था कि उनसे बैर लेने का साहस वह नहीं कर सके। इतना ही नहीं उनके समाज के हित मित्रों ने भी जाति बहिष्कृत करने की धमकी दी। ऐसे में वह नहीं सम्भल पाए और उनके ही पिता ने उन्हें घर से बाहर निकाल दिया। घर से बेघर होने के बाद ज्योतिराव ने सोचा कि यदि हम सावित्रीबाई के घर जाते हैं तो वहाँ भी उनके माता-पिता को पुरोहितों का विरोध झेलना पड़ेगा और वह भी कष्ट में पड़ जाएँगे। अतः उन्होंने अपने दूसरे घर जाने का भी विचार त्याग दिया। ऐसे में माता फ़ातिमा शेख ने उन्हें अपने घर बुलाया और उनके आवास की व्यवस्था की। उन्होंने मना किया कि हम नहीं चाहते हैं कि आपके प्राण संकट में पड़ें। ऐसे में माता फ़ातिमा शेख के भाई उस्मान शेख आकर खड़े हो गए और कहा कि इतनी किसी की हिम्मत नहीं कि हमारे ऊपर आवाज उठा दे। आप निःसंकोच हमारे निवास में रहे। हमारे रहते हुए आप सराय में रहें यह हमारे लिए शर्मनाक है।

इस तरह शेख परिवार के इतने अनुरोध पर ज्योतिराव व सावित्रीबाई उनके यहाँ रहने लगे। पुनश्च यह भी हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्धांत की तरह है कि आज जिन्हें हम अपना दुश्मन मानते हैं उन्होंने कितनी सहायता की माताजी की। जिन पुरोहितों से पूछकर हम शादी-विवाह करते हैं वह इतने ज़ालिम हैं कि उन्होंने स्वयं कुछ नहीं किया लेकिन ज्योतिराव के पिता को भड़काकर फुले दम्पति को अपनी ही घर से बेघर करवा दिया। उनके पिता बाद में बहुत पछताए जब फुले दम्पति को वहाँ के कलेक्टर ने सम्मानित किया। इस समय वह बीमार थे। जैसे ही फुले दम्पति को पता चला कि पिताजी बीमार हैं वह उन्हें देखने पहुँच गए। घर पहुँचे तो मालूम हुआ कि पिताजी बहुत बीमार हैं और बिस्तर से नहीं उठ पा रहे हैं। वह उनके पास पहुँचे तो पिताजी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह उनसे आँख मिला सकें। उनकी आँखों से गिर रहे आँसुओं ने बिना कुछ कहे ही सारी बात बयाँ कर दी। पिता-पुत्र गले से लग गए। उजड़ा घर फिर से बस गया।

शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना : बाबू उस्मान शेख

उस समय ही नहीं आज भी विधवा विवाह हमारे समाज में मान्य नहीं है। विधवा का विवाह विधुर से ही हो सकता है। मुस्लिम समाज में ऐसा नहीं है। वहाँ विधवा विवाह में कोई समस्या नहीं है क्योंकि वहाँ अस्पृश्यता नहीं है। मुस्लिम शासकों में सम्राट अकबर ने अब्दुर्रहीम खानखाना की मृत्यु के बाद उनकी विधवा से

बेटे यशवंतराव के साथ ज्योतिराव

विवाह किया था जबकि उनकी विधवा को एक बेटा भी था। वहाँ विवाह सामाजिक सुरक्षा का एक कवच भी है। विधवाओं के विवाह को कानूनी मान्यता नहीं थी। ऐसे में विधावाओ की दशा क्या होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है और प्रभु समाज कितना शोषण करता होगा। यह लिखने की बात नहीं है। आज भी मथुरा के मंदिरों में वृद्ध विधवाएँ देखीं जा सकती हैं। देवदासी प्रथा से अंदाजा लगाया जा सकता है। बहुत-सी महिलाएँ जो गर्भवती हो जाती थीं, के सामने आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचता था। प्रभु समाज भी इससे बचा नहीं था। इसी समय काल में सावित्रीबाई को एक महिला मिली, जो नदी में कूद कर आत्महत्या करने जा रही थी। माता सावित्रीबाई ने उसे पकड़

लिया। उसकी हालत देखते ही वह सारा माजरा समझ गई और उसे दिलासा देकर घर ले आई। उसके बच्चे का प्रसव कराया। यहीं से स्थापना हुई *शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह की* । वह भी बाबू उस्मान शेख के घर में। कितनी महानता थी बाबू उस्मान शेख के दिल में। ऐसे महिलाओं को आश्रय और उनके बच्चों का प्रसव कराने के लिए उन्होंने अपने घर में ही जगह दी। हृदय विदीर्ण हो जाता है कि इस समाज के एक सामान्य दम्पति ने इतनी सहायता की हमारे महापुरुषों की और हम उनके समाज को अपना दुश्मन मानते हैं। सामाजिक शिक्षा के अभाव में यह अनर्थ हुआ है। एक सरकार हुआ करती थी जिसने रात में प्रौढ़ शिक्षा अभियान चलाया था। हमारे समाज के वृद्धजन भी अक्षरज्ञान प्राप्त करते थे। वह सरकार देशद्रोही थी? आज सरकार है जो खुलेआम कहती है कि ज्यादा पढ़ने-लिखने की आवश्यकता नहीं है। कोई फेल नहीं होगा सब पास। *न पढ़ेगा इंडिया, न बढ़ेगा इंडिया* । सब लोग केवल उतना ही करेंगे, जितना प्रभु समाज या शासक वर्ग कहेगा। जब पढ़ा ही नहीं तो विरोध क्या करेगा?

बाबू उस्मान शेख के घर में *शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह* की स्थापना हो गई। पहली महिला और उसका बच्चा जिसे बचाया गया, वह ब्राह्मण समाज से था। काशीबाई नामक यह महिला अपनों की ही अय्याशी का शिकार हो गई थी और आत्महत्या करने जा रही थी। यही नहीं माता सावित्रीबाई ने उसके बच्चे को गोद ले लिया। फुले दम्पति निःसंतान थे। उन्होंने इस बच्चे को पढ़ा-लिखा कर डॉक्टर बनाया। पूना, पेशवाओं की राजधानी रही है। निश्चित रूप से वह प्रभु समाज का गढ़ रहा था। उस समय हिंदू वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर थी। विधवा विवाह की कल्पना करना ही सम्भव नहीं था। काफी महिलाएँ इस तरह सामाजिक अपराधों का शिकार हो जाया करती थीं। पचास से अधिक महिलाओं व बच्चों को इस गृह में बचाया गया और जीवनदान दिया गया। इस गृह में आधे भागीदार थे माता फ़ातिमा शेख और बाबू उस्मान शेख।

देवी-देवताओं में आस्था नहीं

तर्क बुद्धि और प्रज्ञा ही आधार है वर्तमान सभ्य समाज और आधुनिकता का। हम जो भी पढ़ाई-लिखाई करते हैं, वह सारी इसी तर्क बुद्धि और प्रज्ञा पर ही आधारित है। इससे इतर विश्वास, अंधविश्वास, मान्यता, देवी-देवता, पाखंड और चमत्कार का कोई स्थान ही नहीं है शिक्षा, बुद्धि और प्रज्ञा में। माता सावित्रीबाई शुरू से ही तर्कशील और प्रज्ञावान थीं। यद्यपि उन्होंने विवाह के बाद पति के घर में पढ़ाई शुरू की थी तथापि बात-बात में तर्क करना और प्रश्न करना उनकी आदत थी। वह बिना सोचे-समझे कोई बात नहीं मानती थीं। उन्हें देवी-देवताओं में कोई आस्था नहीं थी। परंतु वह इतनी प्रज्ञावान थीं कि दूसरों से उलझती नहीं थीं। हाँ, अगर कोई कमजोर को परेशान करता तो यह उनसे बर्दाश्त नहीं होता था। यद्यपि उनकी देवी-देवताओं में कोई आस्था नहीं थी। उन्हें इस बात का पूरा एहसास था कि देश का बहुसंख्यक समाज इन देवी-देवताओं में इस कदर डूबा है कि उसका सीधा विरोध उन्हें ही कमजोर कर देगा। उन्हें यह भी पता चल गया था कि इसका सबसे बड़ा कारण बहुसंख्यक समाज का अशिक्षित होना था। जिस समाज पर कानून बनाकर पढ़ने-लिखने पर रोक लगाई गई हो, उससे कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। हाँ, उन्हें पढ़ा-लिखा कर इस लायक बनाया जा सकता है कि वह अपने मित्र और शत्रु की पहचान कर सकें।

पति की प्रेरणा से शिक्षा

1840 में जब माताजी का विवाह हुआ, उस समय वे मात्र 9 वर्ष की थीं। उस समय की परम्परा के अनुसार उन्होंने विद्यालय का मुँह नहीं देखा था। देखें भी कैसे? कानूनन रोक थी। कृपया कतई शंकित न होवें, यह रोक इतनी प्रबल थी

ज्योतिराव फुले

कि उसने *स्कॉटिश मिशन* को बालिका विद्यालय नहीं चलाने दिया। यहाँ तक कि कलेक्टर को आदेश करना पड़ा कि कोई भी इन स्कूलों में बिना उनकी अनुमति के प्रवेश नहीं ले पाएगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कौन विरोध कर रहा था! निश्चित रूप से वही विरोध कर रहे थे, जिन्होंने सावित्रीबाई के श्वसुर को भड़का कर बहु-बेटे को घर से निकलवा दिया था। कारण, वह स्कूल चलाकर धर्म भ्रष्ट कर रहे थे। वाह! क्या धर्म था, जो पढ़ने लिखने से नष्ट हो जाता था। खैर, जो भी हो सावित्रीबाई निपट निरक्षर थीं, लेकिन मेधा और प्रज्ञा में बहुत तेज। एक बार पति ज्योतिराव ने समझा दिया तो पढ़ाई शुरू हो गई। विद्यालय में नहीं, पेड़ के नीचे, दोपहर भोजन के अवकाश में। इसी स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर उन्होंने नियमित स्कूल खोले। उनके पति ज्योतिराव अंग्रेजों की दया से मिशन स्कूल से कुछ पढ़-लिख पा गए थे। देशी विद्यालय केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा देते थे। *महाभारत* में भी यही लिखा है, जहाँ द्रोणाचार्य साफ-साफ कहते हैं कि वह केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा देते हैं और किसी को नहीं, भले ही वह क्षत्रिय ही क्यों न हो। जब यही कानून था और वही कानून के रखवाले भी थे, तो अंत्यजों को पढ़ने कौन देता, उन्हें विद्यालय में लाता कौन? स्पष्ट रूप से जो मिशनरी इस समय काम कर रहे थे। उन्होंने

विद्यालय, चिकित्सालय और अन्य जनोपयोगी कार्य चला रखे थे, जिनकी बदौलत ज्योतिराव और सावित्री बाई पढ़ पाए। आगे बढ़ कर शिक्षा का द्वार हम सबके लिए खोल पाए। राष्ट्रपिता ज्योतिराव फुले ने माता सावित्रीबाई को अक्षर ज्ञान कराया। उन्हीं की प्ररणा से वह आगे बढ़ीं और पढ़ने-लिखने के लिए आवश्यक शिक्षा प्राप्त की।

महात्मा ज्योतिराव की मौसेरी बहन थीं सगुणाबाई क्षीरसागर। सगुणाबाई क्षीरसागर ने *स्कॉटिश मिशन स्कूल* में प्रवेश पाया था। उनके प्रवेश के लिए महात्मा ज्योतिराव को जिला कलक्टर से पत्र प्राप्त करने में बहुत मेहनत करनी पड़ी थी। जब पहली बार ज्योतिराव ने माताजी को पढ़ने के लिए कहा तो वह हँसने लगीं और कहा कि यह सब तो ब्राह्मणों का काम है। हम लोगों के लिए पढ़ाई-लिखाई नहीं है। यह शास्त्रों के विरुद्ध है। हम क्यों ऐसा अनर्थ करें? ज्योतिराव ने जब कहा कि सगुणाबाई भी तो पढ़ी-लिखी हैं। सावित्रीबाई ने कहा तभी तो अकेली हैं। ज्योतिराव ने कहा इसका पढ़ाई से क्या मतलब? आज सगुणाबाई यदि पढ़ी नहीं होतीं तो भीख माँग कर ही उनका गुजारा होता। वह पढ़ी-लिखीं हैं इसीलिए अकेले जी ले रही हैं। इन बातों का सावित्रीबाई पर गहरा असर हुआ और उन्होंने पढ़ने में रुचि लेनी शुरू कर दी।

थॉमस क्लार्कसन का प्रभाव

माता सावित्रीबाई को अपनी पढ़ाई के दौरान-थॉमस क्लार्कसन की जीवनी पर लिखी एक पुस्तक मिली थी। इसे सावित्रीबाई ने कई बार पढ़ा। वह थॉमस क्लार्कसन के संघर्ष से बहुत प्रभावित थीं। थॉमस क्लार्कसन अमेरिका के महान समाजसेवी थे, जिन्होंने 'काले' लोगों के उद्धार के लिए बहुत कार्य किया था। वर्ष 1875 में जब वह कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, तभी उनका दिमाग इस प्रथा की ओर गया। उस समय अंग्रेज लोग काले-नीग्रो लोगों को गुलाम बनाकर जानवरों की तरह उनका व्यापार करते थे। उन पर अमानुषिक अत्याचार करते हुए खेती और अन्य ऐसे कामों में लगाते थे जिन कामों को आज भी अपने देश में अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों का आधिकारिक कार्य माना जाता है। थॉमस क्लार्कसन ने इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया। उनका संघर्ष और आंदोलन इतना प्रभावशाली था कि सरकार को उनकी बातें माननी पड़ीं। 'काले' लोगों को गुलाम बनाने की प्रथा समाप्त हुई।

थॉमस क्लाकर्सन
28 मार्च 1760–26 सितम्बर 1846

माता सावित्रीबाई थॉमस क्लार्कसन के संघर्ष से इतना उत्साहित थीं कि उन्होंने यह भली प्रकार समझ लिया था कि जब तक लोग शिक्षित नहीं होंगे, उन्हें अपने अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं होगी। उनका कल्याण नहीं हो सकता। अस्त्र-शस्त्र से केवल रक्तपात हो सकता है जनआंदोलन नहीं। उन्होंने थॉमस क्लार्कसन के आंदोलन में 'काले' लोगों की तुलना अपने देशवासियों से की तो बहुत समानता दिखाई पड़ी। यह तुलना करने पर साफ-साफ निकल कर आया कि

सामाजिक जागरुकता और अपना संगठन न होने के कारण संख्या में अधिक होते हुए भी पिछड़ा समाज शोषित है। अपने देश में तो कानूनन महिलाओं और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं है। यदि मान भी लिया जाए कि अधिकार है, (अंग्रेज सरकार ने यह रोक हटा ली थी) तो उसका क्रियान्वयन कैसे होगा? क्रियान्वयन तभी हो सकता है जब विद्यालय खोले जाए। किसी और के द्वारा खोले गए विद्यालयों का हश्र उन्होंने 1932 में *स्कॉटिश मिशन* में देख लिया था। उससे भी आगे देशी विद्यालय, जो ब्राह्मणों के द्वारा संचालित थे, उनमें ब्राह्मणों के अतिरिक्त और किसी को प्रवेश मिलने का प्रश्न ही नहीं था। सगुणाबाई ने इसी *स्कॉटिश मिशन स्कूल* में कुछ समय तक अध्ययन किया था। उसमें प्रवेश के लिए कलेक्टर का सिफारिशी पत्र होना आवश्यक था। जैसें बच्चियाँ पढ़ने न जा रहीं हो वरन शस्त्र लाइसेंस के लिए आवेदन कर रही हों। मतलब साफ, लाठी लेकर खड़े हो जाना कि कुछ भी हो पढ़ने नहीं देना है। इससे उनका विश्वास पक्का हो गया कि क्यों प्रभु समाज के लोग स्कूलों का विरोध करते हैं? इससे उन्हें यह प्रेरणा मिली कि विद्यालय और शिक्षा के बिना समाज का कल्याण सम्भव ही नहीं है। ऐसा न होने पर अनर्थ होता ही रहेगा। हमारा बहुसंख्यक समाज अपने शोषकों को ही अपना 'प्रभु' मान कर उनके द्वारा किए जा रहे 'धार्मिक अत्याचार' को ईश्वर का प्रसाद मानकर अपने को धन्य मानता रहेगा। आज भी कमोबेश यही हो रहा है। जो समाज या उसका 'प्रभु' वर्ग हमारे बच्चों के पढ़ने-लिखने का विरोध करता है, हमारा समाज उसी के हाथ में अपने घर-परिवार की चाभी देकर अपने को धन्य मानता है। उससे बिना पूछे अपने बच्चों के शादी-विवाह भी नहीं करता है।

मामा परमानंद से प्रोत्साहन

माता सावित्रीबाई को अपने कार्य में जिनसे सहायता मिली उनमें लहुजी साल्वे, तात्या साहब भिड़े, बाबू उस्मान शेख, माता फ़ातिमा शेख के अतिरिक्त एक प्रमुख नाम था उनके मामा परमानंद का। बहुत से मौकों पर मामा परमानंद ने उनकी सहायता की। यहाँ तक कि जब ज्योतिराव के पिता ने फुले दम्पति को घर से निकाल दिया था तो मामा परमानंद उनके पिताजी से लड़ गए। उन्होंने कहा- तुम्हारे बहू-बेटे बच्चियों की पढ़ाई के लिए स्कूल खोल रहे हैं। ब्राह्मणों के स्कूलों में हम लोगों का प्रवेश वर्जित है। आपके बहू-बेटे इतना बड़ा क्रांतिकारी कार्य कर रहे हैं, आपको इसमें सहयोग करना चाहिए। आपको ऐसे स्कूल के लिए अपना घर देना चाहिए और जगह देना तो दूर आपने उन्हें ही घर से निकाल दिया। समाज आप पर थूकेगा कि ऐसे क्रांतिकारी बच्चों को आप सहयोग न दे पाते तो वैसे ही रहने देते अपनी हाल पर। उन्हें घर से भगाने की क्या ज़रूरत थी? परंतु ज्योतिराव के पिताजी केवल पुरोहितों की भाषा ही समझते थे। वह चुपचाप सुनते रहे और ईश्वर के कोप से फुले दम्पति के निःसंतान होने की कहानी सुनाते रहे, यही उन्होंने सगुणाबाई के लिए भी कहा। मामा परमानंद ने फुले दम्पति से कई बार कहा कि आपका दूसरे के घर में रहना हमारे लिए अपमान स्वरूप है। यह मेरे लिए अत्यंत कष्टदायक है कि आप किसी अन्य के यहाँ शरण ले कर रहें। परंतु फुले दम्पति ने धन्यवाद और कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए मामा परमानंद को मना कर दिया।

मामा परमानंद अक्सर माता सावित्रीबाई के विद्यालय में आया करते थे और प्रोत्साहित करते हुए कहते थे- 'ब्राह्मणों के नियमों के विरुद्ध जा कर बालिकाओं के लिए विद्यालय खोलना, वह भी पूना जैसे पेशवाई गढ़ में। यह वैसा ही है जैसे शेर की मांद में घर बनाकर रहना। आप लोग शेर की मांद में घर बनाकर रह रहे हो। कुछ भी हो आपका यह उपकार देश कभी नहीं भूलेगा।'

ब्राह्मणी काशीबाई को जीवनदान

महापुरुषों का जीवन समाज और देश के लिए आइना होता है। जो भी हो वर्ण व्यवस्था की भट्ठी में भुने हुए समाज जिसे केवल जाति के आधार पर अपमानित करना ही सबसे बड़ा सम्माननीय कार्य लगता हो, उसमें सभी समाजों को बराबर प्रोत्साहन और कमजोर वर्गों को आरक्षण जैसा विशेषाधिकार समाज में जिंदा रखने के लिए अनिवार्य है। नहीं तो माता सावित्रीबाई जैसी युग महिलाएँ भी वर्ण व्यवस्था की भट्ठी में भस्म हो जातीं। माता सावित्रीबाई स्वयं इसकी सबसे बड़ी उदाहरण हैं। जिस समाज ने उनका इतना विरोध किया, उसी समाज की विधवा स्त्री को बचाकर *बाल हत्या प्रतिबंधक गृह* की स्थापना की। अपनो की ही शिकार विधवा काशीबाई को उन्होंने आत्महत्या से रोका और अपने घर ले आईं लेकिन उन्हें यह एहसास हुआ कि केवल काशीबाई को बचा लेने से मानवता बच जाएगी? नहीं, परंतु हमें उतना कार्य करना चाहिए जितना हम कर सकते हैं। यह विचार कर उन्होंने पति ज्योतिराव के साथ मिलकर यह *बाल शिशु हत्या प्रतिबंधक* घर स्थापित किया। लेकिन कहाँ? और कहीं जगह नहीं मिली! जगह दी तो बाबू उस्मान शेख ने, जिनके समाज को हम बुरा समझते हैं क्यों? यह जानकारी नहीं है। बाबू उस्मान शेख के घर में *बाल हत्या प्रतिबंधक गृह* की स्थापना हुई। मामा परमानंद ने भी अपनी पूरी क्षमता से इस कार्य में सहायता की। इस कार्य की सफलता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि मात्र चार वर्षों में, 100 से अधिक महिलाओं और बच्चों को बचाया गया।

आज भी समाज में विधवाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। काशी और वृंदावन के मंदिरों में हम आज भी देख सकते है कि किस तरह इनके झुंड मंदिर के देवता से भीख की आशा में अपना जीवन गुज़ार रहीं हैं। दो सौ साल पहले सती प्रथा अर्थात कानूनन ज़िंदा जला दिए जाने से किसी तरह बच गई युवतियों को जीने का अधिकार ही नहीं था। पुरोहितों की दया पर केश मुंडन कर भिक्षावृत्ति और

अपने को जन्मजात अपराधी मानकर किसी तरह प्राण बचाना ही उनका जीवन हुआ करता था। इसमें यदि उनके भाग्य ने धोखा दिया, मतलब वह किसी अपराधी की कुत्सित वासना का शिकार हुई तो अपराधी को नहीं उन्हें ही सजा मिलती थी और उसका एकमात्र विकल्प होता था शिशु हत्या या आत्महत्या। ब्राह्मण समाज इस प्रथा का सबसे बड़ा शिकार था।

क्या जरूरत थी माताजी को यह काम करने की? विद्यालय वह चला ही रही थीं। परंतु नहीं, महान व्यक्तित्व की पहचान ही यही होती है कि वह मानवता की हत्या होता हुआ देख कर चुप बैठ ही नहीं सकता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे माता सावित्रीबाई ने महामारी प्लेग और अकाल पीड़ितों की भी बहुत सहायता की। उन्होंने मानवता के आगे जाति और धर्म नहीं देखा। काशीबाई के बेटे को गोद लिया। उसे पढ़ा-लिखा कर चिकित्सक बनाया और समाज में सम्मान दिलाया लेकिन कितना कृतघ्न है वर्ण व्यवस्था के शीर्ष पर बैठा समाज कि फुले दम्पति के कामों को रबर से मिटाने का पूरा प्रयास किया। धन्य है स्मृतिशेष बाबू शांति स्वरूप बौद्ध साहब जिनकी मेहनत और त्याग मांता सावित्रीबाई के इतिहास को ज़िंदा रख पाए।

नवीन कविता की जननी

माता सावित्रीबाई की रचनाएँ आधुनिक पुनर्जागरण काल की शुरुआत को इंगित करती हैं। अपनी कविताओं में माता सावित्री ने समाज की वास्तविकता को उजागर किया है। बिना किसी से शरमाए, घबराए उन्होंने वह लिखा जो लिखने की हिम्मत अन्य लेखक भी नहीं जुटा पाए। उन्होंने अपनी रचनाओं में साफ-साफ अंग्रेजी सत्ता की तारीफ की है। यह भी साफ-साफ बताया कि अंग्रेजी सत्ता और अंग्रेजों ने कभी भेदभाव नहीं किया। उन्होंने *मनुस्मृति* को ध्वस्त कर समान प्रक्रिया संहिता बनाई। उनकी रचनाओं का उतना प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता दिखता। कारण स्पष्ट है कि हमारे देश की परिस्थिति इस तरह की है, जिसकी तुलना विश्व के किसी भी देश से नहीं हो सकती। नामीबिया और युगांडा से भी नहीं। यहाँ कानून बनाकर मानवता का विनाश किया जा रहा है। समाज और देश के एक वर्ग को इस तरह पतित बना दिया गया है कि उसको देखना, उसका छू जाना, कानूनन अपराध है। बिना किसी कारण के। अस्पृश्यता कोई कारण नहीं! धरती पर जन्म लेना ही उसका पाप था। अन्य देशों में भी भेद-भाव था, परंतु वहाँ का ईश्वरीय कानून उसकी अनुमति नहीं देता था। हमारे देश में आज की तारीख में भी देश के प्रथम नागरिक यानी राष्ट्रपति को ही मंदिर में जाने से रोक दिया जाता है। पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को पुरी के मंदिर से धक्के मार कर बाहर कर दिया गया था। आज की तारीख में यह स्थिति है तो दो सौ साल पहले क्या स्थिति होगी? इसकी झलक हम माता सावित्रीबाई के जीवन में ही देख लेते हैं। जब विद्यालय खोलने के अपराध में उनके सास-श्वसुर ने ही घर से बाहर निकाल दिया। माता सावित्रीबाई और राष्ट्रपिता ज्योतिराव की कविताएँ व साहित्य महाराष्ट्र में सामाजिक जागरण की अग्रदूत मानी जाती हैं। साहित्य के क्षेत्र में फुले दम्पति की रचनाएँ देश में मानवता, समता, बंधुता और देशप्रेम से ओत-प्रोत है। इनमें समाज के कमजोर वर्गों के धार्मिक और सांस्कृतिक शोषण व उससे जूझती

मानवता का सचित्र वर्णन है। यह अलग बात है कि देश की वर्णव्यवस्थावादी मुख्यधारा को इन तथ्यों से कोई मतलब नहीं था। मानो देश की समस्त सम्पत्तियों को उपभोग करने के लिए ही प्रभु समाज का निर्माण किया गया था। यह उस आंदोलन की शुरुआत थी, जिसके आगे चलकर बाबासाहब के द्वारा कानून और संविधान के माध्यम से भारत में मानवता का उद्धार किया गया। माताजी की कविताओं में से सबसे क्रांतिकारी कविताएँ निम्नवत हैं-

अँग्रेजी राज

अँग्रेजी राज में सभी इंसान
लिखने-पढ़ने के हो गए अधिकारी
अँग्रेजी सत्ता की घोषणा है क्रांतिकारी
पढ़ने-लिखने के लिए हमारे पास आँख और बुद्धि है
अब पढ़ने लगी नारी और
सभी शूद्र एक साथ
देखिए गरजता है
गूँजता है
अँग्रेजी भाषा का नगाड़ा
और साथ-साथ है अँग्रेजी सत्ता की धाक
अनपढ़ों को देते हैं अँग्रेज
पढ़ने-लिखने का सुनहरा अवसर
किंतु है लूट-खसोट, हत्या, खून, चोरी
सभी गुनाहों पर पाबंदी।

माता सावित्रीबाई ने आठ पुस्तकों की रचना की। महाराष्ट्र में इसके पहले कविताओं में तुकबंदी चलती थी। उन्होंने इसे हटाकर भाव प्रधानता देते हुए नवीन कविता शैली को जन्म दिया। महाराष्ट्र में सावित्रीबाई नवीन कविता की जन्मदात्री मानी जाती हैं।

गम्भीर विचारक माता सावित्री

थॉमस क्लार्कसन की जीवनी से माता सावित्रीबाई इतनी प्रभावित थीं कि उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था, बालिकाओं के लिए विद्यालय खोलना है। देश और

सत्य शोधक समाज की बैठक का चित्रण

समाज को आगे बढ़ाना है तो 'जन्मदात्री' को हर तरह से शिक्षित, सबल और प्रज्ञावान होना चाहिए। इसी विचार पर आगे चलकर सावित्रीबाई एक-एक कर 18 विद्यालयों की स्थापना की। सावित्रीबाई के विचार जो हिंदू समाज की धार्मिक मान्यताओं के अनुसार क्रांतिकारी थे, को पढ़कर दिमाग हिल जाता है कि आज हमें क्या पढ़ाया जाता है और वास्तविकता क्या है। आज से दो शताब्दी पहले बिना किसी मीडिया के माता सावित्रीबाई ने वह समझ लिया था और आज हम नहीं समझ पा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप-

शूद्र का अर्थ

शूद्र, शब्द का सही अर्थ है नेटिव

पर आक्रामक शासकों ने
शूद्र का ठप्पा लगा दिया।

पराजित शूद्र हुए गुलाम,
ईरानी ब्राह्मणों के,
और,
ब्राह्मण अँग्रेजों के,
तब बने उग्र शूद्र।

असल में शूद्र ही,
स्वामी हैं इंडिया के,
नाम उनका था इंडियन।
यह शूद्र पराक्रमी हमारे पुरखे,
उन्हीं प्रतापी शूरवीरों के,
हम सभी हैं वंशज।

माता सावित्रीबाई की रचनाओं में समाज और देश के प्रति पीड़ा झलकती है। दो सौ वर्ष के बाद भी आज मुख्यधारा के अनुसार स्वाधीनता आंदोलन अंग्रेजों के विरुद्ध! जिन्होंने हमें शूद्र से आदमी बनाया। उन्हीं को देश से बाहर करने का आंदोलन हमने चलाया? कितनी गम्भीरता थी माता सावित्रीबाई की सोच और प्रज्ञा में, जिसके बारे में हमारे नेता अभी भी भूल कर जाते हैं। शत्रु समाज के साथ मित्रता का व्यवहार करते हैं और मित्रों को अपना दुश्मन मानते हैं। जो आज भी देश की कमजोरी और पिछड़ेपन की जड़ है।

प्रथम महिला आक्रोश: मुक्ता साल्वे

माता सावित्रीबाई के विद्यालय में मुक्ता साल्वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थी थीं। माता सावित्रीबाई के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मुक्ता साल्वे ने एक निबंध लिखा था। निबंध में उस समय की महिलाओं के सामाजिक जीवन का सजीव चित्रण करते हुए उन पर होने वाले सांस्कृतिक अत्याचारों को रेखांकित किया गया था। माता मुक्ता साल्वे मातंग समाज से थीं। उस समय और आज भी यह समाज अछूत माना जाता है। शिक्षा पाकर किस तरह व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है, इसकी जीवंत मिसाल हैं मुक्ता साल्वे। दूसरा उदाहरण बाबासाहब का है, जिसके आगे सम्पूर्ण विश्व का प्रबुद्ध और जीवित समाज नतमस्तक होता है। यह दो उदाहरण ही सिद्ध करते हैं कि इस व्यवस्था ने देश का कितना विनाश किया है। यह उदाहरण तो वह हैं जो सामने आ गए। यह मानने में कोई शंका नहीं है कि 99 प्रतिशत प्रतिभाएँ तो सामने आने से पहले ही वर्ण व्यवस्था की भट्ठी में भस्म हो गई होंगी। बाबू जगदेव प्रसाद कुशवाहा इसके तीसरे उदाहरण हैं, जिनकी पुलिस थाने में ही हत्या कर दी गई थी। यह कहना बेमानी है कि किसने! उस समय हिंदू वर्ण व्यवस्था में बुरी तरह जकड़े हुए समाज में किसी की निगाह ही नहीं जाती थी। ऐसे में कक्षा आठ में पढ़ने वाली बालिका ने वह देखा जो आज भी हम नहीं देख पाते हैं। अपने निबंध में उन्होंने बाल विवाह, कन्या शिशु हत्या, सती प्रथा का इतना जीवंत चित्रण किया कि यह निबंध आज की तारीख में भी *भारतीय महिला आक्रोश की प्रथम आवाज़* के नाम से जाना जाता है।

दलित विमुक्ति की पहली आवाज़

दलित शब्द आमतौर पर प्रयुक्त होता है अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए, लेकिन हिंदू कानूनों के अनुसार ऊपर के तीन समाजों को छोड़कर शेष को अधिकार ही नहीं था पढ़ने-लिखने का। जिसे पढ़ने लिखने का ही अधिकार नहीं है, उसके पास बुद्धि, प्रज्ञा का क्या हाल होगा? यह हम आज की तारीख में सोच, समझ और देख भी सकते हैं अपने ही घर की महिलाओं में जो आज की सबसे बड़ी भक्त हैं ब्राह्मणों की। ऐसा नहीं है कि वे हमें नहीं चाहती हैं या कोई कमी है उनके प्यार में। उन्हें यह जानकारी नहीं है कि जिनकी वह पूजा करती हैं वही लोग पुरोहित के रूप में उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का विरोध करते हैं। जब पढ़ने नहीं देते तो नौकरी क्या करने देंगे? ओबीसी समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह अपने को दलित मानता ही नहीं है, जबकि सबसे बड़ा अध्येता भी वही है *रामायण, महाभारत* और अन्य हिंदू ग्रंथों का। इन्ही ग्रंथों में साफ-साफ लिखा हुआ है कि शूद्रों अर्थात ऊपर के तीन समाजों को छोड़कर शेष बचे भाग को पढ़ने का अधिकार ही नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के बाद जो समाज आता है वह शूद्र समाज है, जिसके दो हिस्से हैं अनुसूचित वर्ग और पिछड़ा वर्ग। पिछड़ा वर्ग में खेती और उससे जुड़े व्यवसायों में लगी जातियाँ जैसे कुर्मी, यादव, तेली, तंबोली, कहार, कुम्हार, बढ़ई, लोहार, मल्लाह आदि जिनकी सेवाएँ ली जा सकती हैं, वे सछूत और दूसरे वर्ग में आती हैं। वह जातियाँ जो अधिकतर भूमिहीन मजदूर हैं, जैसे चमार, धोबी, पासी आदि, उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है। यह लोग आमतौर पर गाँव के बाहर रहते थे। अब जनसंख्या बढ़ जाने के कारण गाँव के अंदर आ गए हैं लेकिन हैं अभी भी गाँव में एक किनारे पर।

माता सावित्रीबाई ने इस षड्यंत्र को समझा। वह इसे तब समझ पाईं, जब उन्होंने पढ़ाई कर ली और विद्यालय खोलने चलीं। सदियों से जिस बुद्धि, विवेक,

प्रज्ञा और विद्वता के व्यवसाय पर एकमात्र ब्राह्मणों का कब्जा था, उस एकाधिकार को तोड़कर माता सावित्रीबाई ने विद्यालय खोले। हमारे समाज में शिक्षा पर कानूनी प्रतिबंध था। अतः हमें यह पता ही नही था कि पढ़ाई-लिखाई मौलिक अधिकार है। देश ने यह मान रखा था कि पढ़ना-लिखना, ज्ञान-विज्ञान ब्राह्मणों का कार्य है। आज जब मौलिक अधिकार है तो किसी को फेल नहीं करना, अर्थात बिना पढ़े सब पास! यह ऐसा सामाजिक-सांस्कृतिक अपराध है, जिसे देश कभी माफ नहीं कर पाएगा। हमारा काम है खेती-किसानी और उससे जुड़े कार्य। क्या परिणाम होगा? समाज के शत्रुओं/ दुश्मनों की पूजा। आज भी हम यही कर रहे हैं। माताजी ने विद्यालय खोल कर शिक्षा के दरवाजे सबके लिए खोल दिए। यही से वह मार्ग खुला, जिससे आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ। देश के बहुसंख्यक वर्ग ने यह समझा कि उसके पास भी बुद्धि है, प्रज्ञा है, वह भी आगे बढ़ सकता है। नेतृत्व कर सकता है। शासक बन सकता है। हमारा इतिहास बताता है कि यह सारा कार्य माता सवित्रीबाई ने अपने पति के सहयोग से किया था। इसके पहले देश और समाज में केवल उतना ही करणीय, था जितना वर्ण व्यवस्था कहती थी। इसी के प्रावधानों को लागू करना प्रत्येक हिंदू राजा का कर्तव्य होता था।

जन्म और बचपन

महाराष्ट्र में सातारा के खंडाला तालुका के नायगाँव में 03 जनवरी, 1831 को खंडोजी नेवसे पाटिल और लक्ष्मीबाई के घर में एक कन्या शिशु ने जन्म लिया। माता-पिता ने बहुत ही प्यार से नाम रखा- सावित्री। पिता खंडोजी वहाँ के बहुत प्रतिष्ठित और सम्भ्रांत भूमिधर थे। उनके पुरखों ने शिवाजी महाराज की सेना में

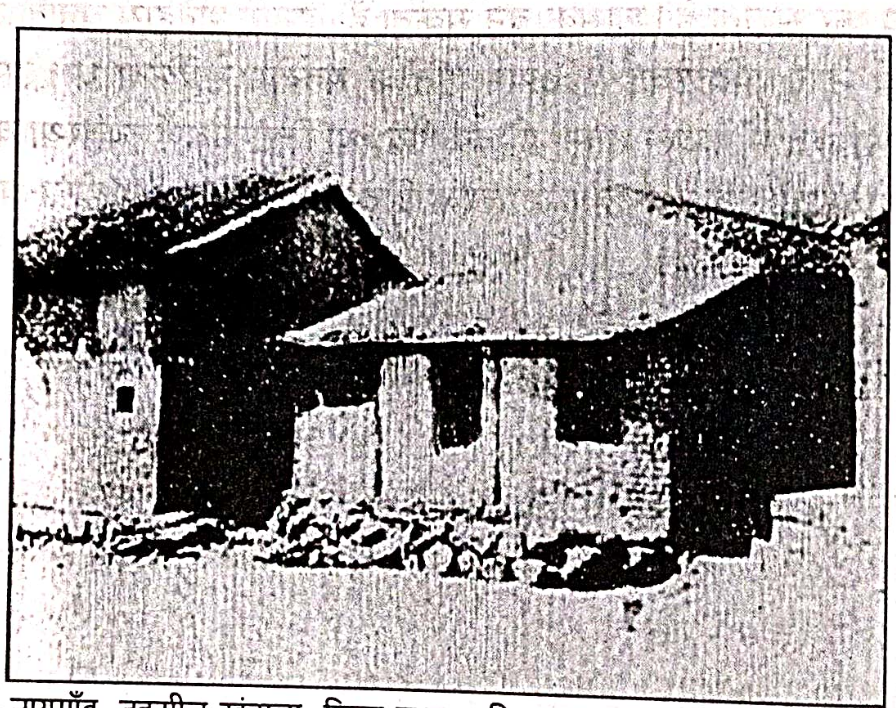

नायगाँव, तहसील खंडाला, जिला सातारा स्थित वह मकान जहाँ सावित्रीबाई फुले का जन्म हुआ।

कार्य करते हुए 'मिल्क' अर्थात पुरस्कार में ज़मीनें प्राप्त की थी। क्षेत्र में उनका बहुत सम्मान था। वह अपनी बुद्धिमत्ता और न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। आपसी विवादों को सुलझाने के लिए सम्बंधित क्षेत्र में उन्हें बुलाया जाता था और उनके फैसले का सभी आदर करते थे। नेतृत्व और न्यायंप्रियता का यह गुण माता सावित्रीबाई को विरासत में मिला था। कमजोरों पर अत्याचार सावित्रीबाई को

बर्दाश्त नहीं होता था। बचपन में अक्सर वह मार खाने वाले बच्चे की ओर से हो लेती और झगड़ा कर आतीं।

अतः यह माना जा सकता है कि माताजी का बचपन सांस्कृतिक रूप से समृद्ध वातावरण में बीता था। उन्हें कहीं भी सामाजिक लघुता या तिरस्कार का सामना नहीं करना पड़ा था। परंतु जो वर्ण व्यवस्था के नियम थे। उन्हें तो आज भी नहीं बदला जा सका है तो दो सदी पहले इसके बारे में सोचना भी सम्भव नहीं था। अतः पढ़ने-लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता था। विद्यालय केवल ब्राह्मणों के लिए ही थे। यह उन्हीं के द्वारा संचालित और स्थापित भी थे। वर्ण व्यवस्था का नियम ही था कि शिक्षा लेने और देने का कार्य ब्राह्मण ही करेंगे। पढ़ने वाली दुकान उन्हीं की थी। उसमें पढ़ने और पढ़ाने वाले भी उन्हीं के लोग थे। बाहरी लोग जब पढ़ पाएँगे तब तो पढ़ाई वाली दुकान खोलेंगे? अब *स्कॉटिश मिशन* की बदौलत ज्योतिराव कुछ पढ़-लिख गए थे। परंतु माता सावित्रीबाई के लिए पढ़ने के बारे में सोचना भी सम्भव नहीं था। यह तो पति ज्योतिराव की प्रेरणा और थॉमस क्लार्कसन का प्रभाव था कि सावित्रीबाई ने पढ़ना शुरू किया। आगे बढ़कर विद्यालय खोले और सबको प्रवेश दिया। ऐसा नहीं किया कि ब्रह्मणों को प्रवेश नहीं दिया। खेत की मेड़ पर, दोपहर के भोजनावकाश में, पेड़ की छाँव में उन्होंने अक्षरज्ञान किया। कलम थी पेड़ की टहनी और कागज थी भूमि। शिक्षा की शुरुआत हुई विवाह के बाद अर्थात माता-पिता ने नहीं पढ़ाया-लिखाया। परम्परा ही नहीं थी! यही हिंदू सभ्यता है। जो कुछ भी अच्छा है वह ऊपर के तीन वर्गों का है। शूद्रों का कुछ नहीं। हो भी क्यों? वह तो नियमतः सेवक हैं, गुलाम हैं, घृणित हैं और जन्मतः पतित हैं? क्यों हैं! यह नहीं पता? सारे धर्मग्रंथों में यही कहा गया है। सभी देवता भी यही कह रहे हैं। यह उन लोगों के लिए मार्गदर्शक है, जो लोग यह कहते हैं कि अच्छे-बुरे हर जगह होते हैं। यह तो ठीक है परंतु कानून का हम क्या करेंगे? भ्रमित न हों, यही आज भी हो रहा है। बिना पढ़े सब पास। जब पढ़ेंगे तभी तो आगे बढ़ पाएँगे। पढ़ा नहीं, वैसे ही पास हो गया। कोई रजिस्ट्री भी करा लेगा जमीन की तो उसे क्या पता कि कहाँ अँगूठा लगा रहा है। विरोध करना तो दूर की बात है।

प्रभु समाज का आरक्षण 60 प्रतिशत। अपनी पूरी कठोरता के साथ वर्ण व्यवस्था आज भी लागू है।

ईसाई पादरी से मुलाक़ात

वह एक ऐसी घटना है जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुरोहितों का कितना दवाव था समाज पर। विशेष रूप से कम शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति पर। चाहे वह पुरुष हो या महिला। इस समय देश पर अंग्रेजों का शासन था। अतः जगह-जगह चर्च और ईसाई धर्मगुरु मिल जाते थे। मजे की बात है कि शासन भी अंग्रेजी था। अफसर भी अंग्रेज थे। जो वर्ण व्यवस्थां और अस्पृश्यता को नहीं मानते थे। फिर भी उनके मिशन, बालिका स्कूल नहीं चला पाए। माता सावित्रीबाई के विद्यालय

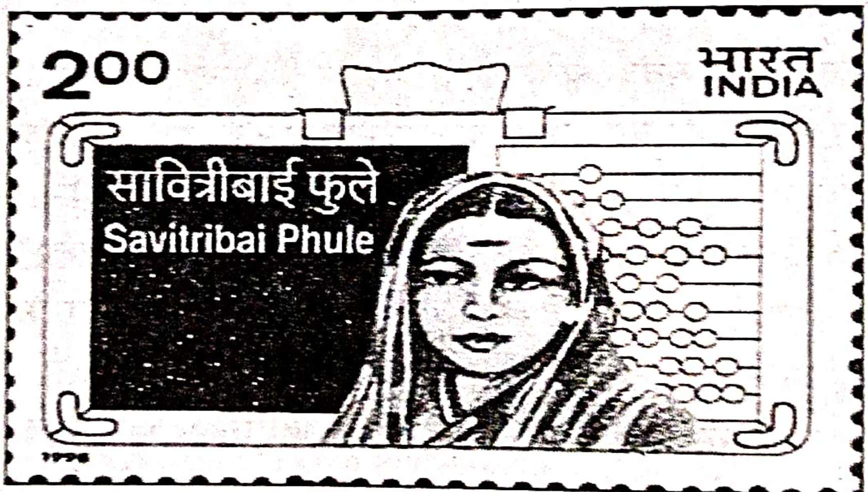

सावित्रीबाई फुले पर भारत सरकार द्वारा 1998 में जारी किया गया डाक टिकट

से पहले 1832 में खुला स्कॉटिश अर्थात स्कॉटलैंड का मिशनरी भी बालिका विद्यालय नहीं चला पाया। उस समय और आज का पुरोहित समाज इतना धूर्त, मक्कार और ढीठ था कि वह हर तरह से विरोध करता था कि उसके अलावा और कोई भी पढ़ने-लिखने न पाए।

माताजी के बचपन की एक घटना है। एक बार वह बाजार से खाने का कुछ सामान ले कर आ रही थीं। रास्ते में चलते समय बाल सुलभ चंचलता से मिठाई खाती भी जा रही थीं। रास्ते में चर्च था और वहाँ एक पादरी कुछ लोगों के साथ

बातें कर रहे थे। उन्होंने सावित्रीबाई को देखा तो रास्ते में चलते समय कुछ खाने से मना किया। बोले- इससे ध्यान भटक सकता है और तुम्हें चोट लग सकती है। रास्ते में ठोकर लग सकती है, गिर सकती हो जिससे मुँह या जीभ कट सकती है। उनको पादरी की बातें अच्छी लगीं और वह खड़ी होकर बहुत ध्यान से उनकी ओर देखने लगीं। वह उनकी वेश-भूषा से बहुत प्रभावित हुईं। उनके लम्बे बाल और सफेद लबादा बहुत ही आकर्षक, भव्य एवं प्रभावोत्पादक लग रहा था। जाते-जाते ईसाई पादरी ने उन्हें एक किताब और बिस्किट का एक पैकेट दिया। कहा कि तुम इसे पढ़ तो नहीं पाओगी लेकिन घर जाकर चित्र देखना। वह दोनों चीजों को लेकर खुशी-खुशी घर आ गईं। अब उनके साथ घर पर जो कुछ हुआ, वह महत्वपूर्ण है। अर्थात क्या बड़ा, क्यां बूढ़ा, क्या बच्चे, पुरोहितों ने किसी को नहीं छोड़ा था। हुआ यूँ कि उनको पादरी से बात करते और बिस्किट व किताब लेते हुए गाँव के ब्राह्मण पुरोहित ने देख लिया था। बस इतना ही पर्याप्त था सवित्रीबाई के माता-पिता को भड़काने के लिए। पुरोहित के अनुसार, ईसाई या मुसलमान से हिंदू छू गया तो हो गया धर्म भ्रष्ट। सारी जिंदगी का पुण्य धुल गया। यह लोक तो बर्बाद हुआ ही परलोक भी भ्रष्ट हो गया।

घर में बवंडर

हाथ में बिस्किट और किताब लिए हुए सावित्री घर पहुँची तो सभी अजीब निगाहों से उन्हें देख रहे थे। वह कुछ समझ ही नहीं पाई कि सब लोग इस तरह क्यों देख रहे हैं? पिताजी ने गुस्से से सावित्रीबाई को दोनों ही सामान फेंक आने को कहा। बुरी तरह डाँट पड़ी और पूछा गया कि किसने यह सामान दिया? किसी दूसरे के हाथ से सामान क्यों लिया तुमने? उन्हें क्या पता कि उनसे कौन-सा अपराध हो गया था?

हुआ यह था कि सावित्रीबाई को ईसाई पादरी से किताब और बिस्किट का पैकेट लेते हुए गाँव के पुरोहित ने देख लिया था। वह यह कैसे बर्दाश्त कर लेता कि उसका यजमान हाथ से निकल जाए। इस समय बहुत से चर्च और ईसाई मिशनरी काम कर रहे थे। उनको भय रहता था कि कहीं उनका यजमान किसी ईसाई से बात न कर ले। इसीलिए वह अपने यजमानों को घेरे रहते थे। बस एक पुरोहित पहुँच गया माता सावित्री के घर और उनके आने से पहले ही सारा माजरा बता कर उनके माता-पिता को भड़का दिया कि यह तो अनर्थ हो गया। मुसलमानों से दस गुना नीच होते हैं पादरी। सावित्री ने पादरी का छुआ सामान ले लिया। अब तो हुआ धर्म भ्रष्ट। धर्म ही नहीं सात पीढ़ी के पुरखे भी धँस गए। अब उन्हें कौन उबारेगा। यजमान अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। अब कोई अनर्थ होगा तो मुझे मत कहना। जब धर्म ही नहीं बचेगा तो क्या बचेगा? डरी-सहमी सावित्री फेंक आई दोनों चीजें लेकिन वह इतनी बेवकूफ नहीं थीं। जान-बूझ कर उन्होंने किताब को ऐसी जगह फेंका था, जहाँ से वह मिल जाती। पिता की डाँट से सहम गई सावित्री। माँ ने समझाया कि किसी अज़नबी से कोई सामान नहीं लेना चाहिए। हो सकता है, उसमें कोई जहर या कोई नुकसानदायक चीज हो। कितना भी कोई कहे किसी अज़नबी से जल्दी बात करनी नहीं चाहिए। जब तक माता-पिता न कहें, उनसे कोई सामान भी नहीं लेना चाहिए। इस तरह माँ ने उन्हें शांत किया।

उनके मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि मान लिया बिस्किट में ज़हर हो सकता है, लेकिन किताब से क्या समस्या है? उनकी उत्सुकता किताब में बनी रही। अतः रात में जब परिवार के सभी लोग सो गए तो यह वह चुपके से किताब उठा लाईं और ढिबरी की रोशनी में उसे देखने लगीं। उसमे चित्र बने थे और कुछ लिखा भी था। जो लिखा था वह तो वह पढ़ नहीं पाईं लेकिन चित्रों से कुछ-कुछ समझ आया। वह ईसा मसीह की किताब थी, जिसमें उन्हें सलीब ले जाते हुए और उसी सलीब पर टाँगा हुआ दिखाया गया था। उनके शरीर से खून बह रहा था। उस समय उन्हें पढ़ न पाने का अफसोस हुआ और उन्होंने ठान लिया कि जब भी अवसर मिलेगा वह पढ़ाई ज़रूर करेंगी।

शिक्षा-दीक्षा

खेत के किनारे पेड़ की छाँव में

यह इतिहास का तथ्य है कि देश की प्रथम अध्यापिका का विद्यारम्भ लगभग 15 वर्ष की आयु में खेत के किनारे हुआ था। पेड़ की टहनी से ज़मीन पर लिख कर। विवाह होने के बाद। विवाह के समय सावित्रीबाई की उम्र 9 वर्ष थी। पिता के घर नहीं पति के घर। और प्रथम गुरु थे उनके पति महात्मा ज्योतिराव फुले। माता

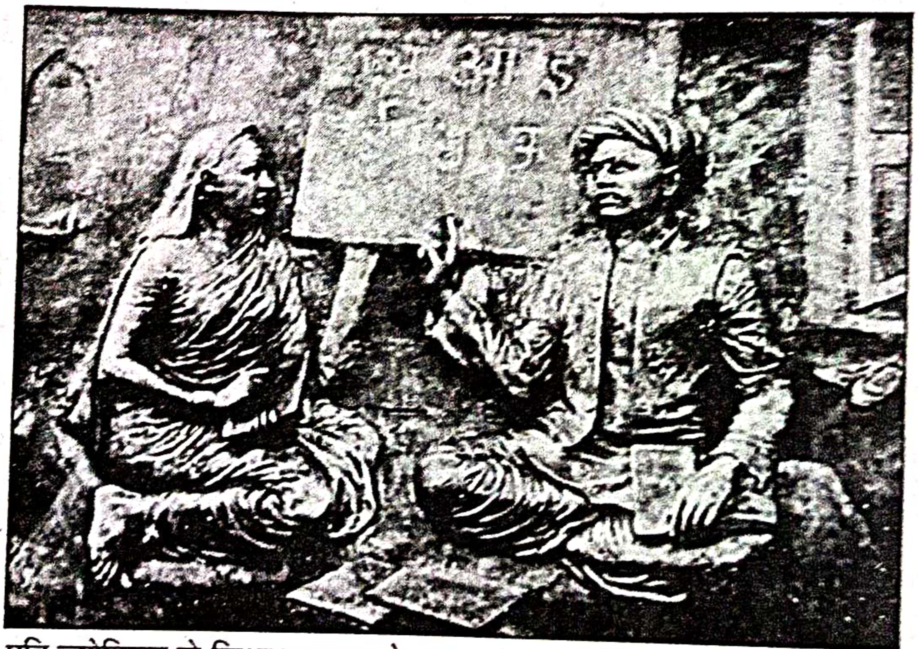

पति ज्योतिराव से शिक्षा प्राप्त करते हुए

सावित्री को उन्होंने ही अक्षरज्ञान कराया था। माताजी को किसी विद्यालय में, शिक्षा नहीं मिली थी। उस समय विद्यालयों में बेटियों का प्रवेश वर्जित था। वह पढ़तीं कैसे? वर्ण व्यवस्था की इनबिल्ट संवेदनहीनता, घृणित और धूर्ततापूर्ण छिनैती, धार्मिक व मानसिक हथियारों, शैक्षिक व सामाजिक डकैती से उपजे सांस्कृतिक पिछड़ेपन, जिसमें पढ़ने का अधिकार ही नहीं था। उसमें फुले दम्पति

पढ़ लिए! कैसे? यह सवाल उठता है। वह पढ़ पाए इसलिए कि उस समय *मनुस्मृति* नही वरन अंग्रेजी कानून व्यवस्था लागू थी। जिसमें पढ़ने लिखने से किसी को रोका नहीं जा सकता था। माताजी के पिता बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वह गाँव में लोगों के विवादों को सुनते और फैसला करते थे। परंतु उनकी बेटी को पढ़ने की आवश्यकता नहीं थी। सब पुरोहित पढ़े-लिखे थे वे उनके मित्र थे। तब भी जैसे ही धर्म पर संकट आया, बिना विलम्ब किए तुरंत पिता से बताया कि बेटी ने अनर्थ कर दिया ईसाई पादरी को छू दिया। हमारे शास्त्रों में विदेश यात्रा इसीलिए मना है कि वहाँ म्लेच्छों का शासन है। यही म्लेच्छ यहाँ भी आ गए हैं। इनसे छू जाना समझो धन भी गया और धर्म भी। उन्होंने यह नहीं कहा कि बिटिया को पढ़ने भेजो। बल्कि यहा कहा- पढ़ना इसका काम नहीं है। जल्दी से इसका विवाह कर पति के घर भेज दो। अब वैसा ही चलन था। माता-पिता और गाँव के सभी लोग सभी सांस्कृतिक गुलाम थे। जैसा महाराज कह दें।

इसे उस समय का चलन कहना उचित नहीं है और न ही देश-काल की परिस्थिति। छिनैती, डाका, जबरदस्ती कानून बनाकर मानवता का विनाश। जिस तालाब में जानवर पानी पीते हों, आदमी उसमें से पानी ले ले तो मार-मार कर अधमरा कर देना कोई परम्परा नहीं हो सकती, चलन नहीं हो सकता है। यह तो अपराध है, सामाजिक अपराध! इसका दोषी कौन है? यह हम सब समझ सकते हैं। अब विद्यालय पूरी तरह बंद तो नही कर सकते। हाँ, बिना पढ़े पास कर सकते हैं। यही सांस्कृतिक अपराध आज भी हो रहा है। यह आज की बात है, पहले की नहीं।

महात्मा ज्योतिराव इतने प्रज्ञावान थे कि उन्होंने सावित्रीबाई को अपने काम के साथ-साथ पढ़ाया भी। उन्होंने वह किया जो वह कर सकते थे। आज उन्हें राष्ट्रपिता माना जाता है। यह हमारा सौभाग्य ही था कि माताजी ने जब शिक्षा पाई तो वह उतने से रुकीं नहीं आगे बढ़ती गईं। आगे बढ़कर उन्होंने स्कूल खोले। वह ज़मींदार नहीं थे, पैसा नहीं था उनके पास। परंतु जो चाहिए था इस काम के लिए वह सब था। आज उन्हीं की देन है कि हमारे देश में वह भी जी सका, आगे बढ़ सका जिसे शूद्र कहा जाता है। नियमतः उसे सार्वजनिक जगहों से पानी पीने का भी अधिकार नहीं था। यही हमारी धर्म व्यवस्था है, वर्ण व्यवस्था है और सभी धार्मिक ग्रंथ भी यही कहते हैं।

विरोध इतना कि दो वस्त्र लेकर पढ़ाने जातीं

यह वास्तविकता है। जब माताजी पढ़ाने निकलती थीं तो पुरोहित समाज के लोग इस क़दर विरोध करते थे कि वह उन पर गोबर, कीचड़ और मैला फेंकते थे। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं; अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य है। इतिहास की सच्चाई है। पढ़ाई करने वालों का इतना विरोध क्यों? वह कोई चोरी डकैती तो कर नहीं रहीं

फोटो साभार–गूगल

थीं। फिर इतना विरोध क्यों? कारण का विश्लेषण करें तो मामला साफ हो जाएगा। शाहूजी महाराज को भी विद्यालय खोलने में ऐसे ही विरोध का सामना करना पड़ा था। अब वह तो राजा थे, राज्य के सारे संसाधन उनके नियंत्रण में थे। उनके सामने विरोध करने की किसी की हिम्मत नहीं थी। समाज के शत्रु पीछे से उनका विरोध कर रहे थे। इसमें उस समय के समाचार पत्र भी शामिल थे। परंतु माता सावित्री तो बिलकुल साधारण परिवार से थीं। यहाँ तक कि उनके पति के

माता-पिता ने अपमानित कर घर से बाहर भी निकाल दिया था। फिर भी उन्होंने विद्यालय खोले। एक दो नहीं 18, वह भी पुरोहितों के गढ़ में। अर्थात *शेर की माँद में अपना घर बनाना* । यह आज दो शतक के बाद उन लोगों के लिए सीख है, जो यह कहते हैं कि अब कोई सुनता नहीं। परंतु माता सावित्रीबाई ने महिला होकर सुनाया और लोगों ने सुना भी।

देश, समाज और शिक्षा के यह शत्रु इतने निकृष्ट थे कि वह सीधे हमला नहीं करते थे। पीठ पीछे छुरा घोंपते थे। हमारे ही समाज के लोगों को भड़का कर उन्ही से हमला करवाते थे। वह सावित्रीबाई का जब कुछ नहीं बिगाड़ पाए तो जब वह पढ़ाने जाती थीं तब रास्ते में छिप कर उनके ऊपर गोबर, मिट्टी व कचरा फेंकते और भाग जाते थे। इससे बचने के लिए माताजी दो साड़ियाँ लेकर पढ़ाने जाती थीं। अब यह तो सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि मैला और कीचड़ फेंकने से पहले निश्चित रूप से फब्तियाँ कसने और हूटिंग करने में भी पीछे नहीं रहते होंगे। इसमें ब्राह्मण समाज की महिलाएँ भी पीछे नहीं थीं। पढ़ाई के शत्रु तो लगे ही थे। सवाल यह है कि इतना विरोध क्यों? वह कोई चोरी-डकैती या कोई अनैतिक कार्य तो कर नहीं रही थीं। फिर विरोध क्यों? बहुत ही गूढ़ प्रश्न है? इसका जवाब देने में हमारे विद्वानों का सिर चकरा जाता है। जबकि यह शिक्षा और समाज के विरोधी आज भी यही कर रहे हैं। सबलों को 60 प्रतिशत आरक्षण, पैरलेल एंट्री सब खुलेआम चल रही है। सीधे लूटमार की वर्ण व्यवस्था लागू है। संविधान खत्म। निश्चित रूप से देश का प्रभु वर्ग कतई नहीं चाहता कि उनके समाज को छोड़ कर और भी कोई समाज पढ़ ले या आगे बढ़ जाए। उसके ऐसा करने से सत्ता में हिस्सेदारी कम हो जाएगी। यह प्रभु वर्ग के लोग तब भी विरोध करते थे और आज भी विरोध कर रहे हैं। पहले क़ानून बनाकर (वर्ण व्यवस्था) और अब बिना परीक्षा के ही सबको पास कर कि यह किसी लायक नहीं बचें और केवल हम ही सत्ता में रहें।

लहुजी साल्वे: सबसे बड़े सहयोगी

माता सावित्रीबाई जब पढ़ाने जाती थीं, उस समय पुरोहित समाज के पुरुष और महिलाएँ उन पर फब्तियाँ कसते। अनाप-शनाप कहते या यूँ कहा जाए कि गालियाँ देते। यहाँ तक कि कीचड़ और मैला फेंकते थे। एक बार तो हद ही हो गई। एक बदमाश अचानक सावित्रीबाई के सामने आ कर खड़ा हो गया और धमकी देने लगा कि उठवा लूँगा। माता सावित्रीबाई को इतना क्रोध आया कि उन्होंने ताबड़तोड़ तीन-चार झापड़ जड़ दिए। इस अप्रत्याशित हमले से वह कुछ समझ ही नहीं पाया और हड़बड़ाकर भाग खड़ा हुआ।

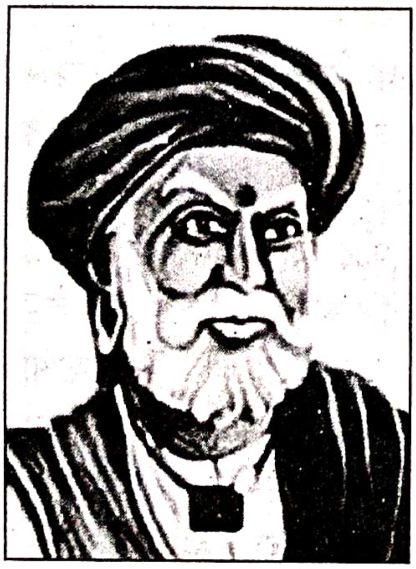
लहुजी साल्वे- 14 नवम्बर 1794 से 17 फरवरी 1881

पुणे में ही अछूत समाज के आचार्य लहुजी साल्वे अखाड़ा चलाते थे और पहलवानों को प्रशिक्षण देते थे। लहुजी साल्वे के पूर्वज शिवाजी महाराज की सेवा में कार्यरत थे। उनके पूर्वजों को सेवा के बदले इनाम में ज़मीनें मिली थीं। इसके कारण उनके पास काफी ज़मीनें थीं और वह प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उन्हें जब इस घटना की जानकारी हुई तो उन्होंने माता सावित्रीबाई की सुरक्षा में चार पहलवानों की ड्यूटी लगा दी। उसके बाद से किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कुछ बोलने की और माताजी एक-एक कर विद्यालय खोलती गईं। इस तरह से जिन्हें हम अछूत मानते हैं उसी समाज से माता सावित्रीबाई को सुरक्षा प्राप्त हुई। यह हमारे लिए बड़ी सीख है कि जिनके कहने से हम अपने सारे कार्य करते हैं, उस समाज ने हमारे लिए शिक्षा का हमेशा विरोध ही किया। लहुजी साल्वे यदि नहीं होते तो माता सावित्रीबाई कदाचित इतने विद्यालय नहीं खोल पातीं।

पाखंडों का प्रबल विरोध

हम समझ सकते हैं कि आज से दो सौ साल पहले समाज और देश की सामाजिक स्थिति क्या रही होगी? जब महिलाओं और पिछड़ों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं था। पाखंड ही ज्ञान और विज्ञान हुआ करता था। आज की तारीख में भी है। हम यदि समाज पर निगाह डालें तो आज भी जो जितना बड़ा पुजारी है वह उतना बड़ा ज्ञानी माना जाता है। आज की तारीख में भी हम देखते है कि शिक्षा और विद्याध्ययन के बाद भी पत्थरों के देवी-देवताओं की विभिन्न आश्चर्यजनक तौर-तरीकों से पूजा करना शान का प्रतीक माना जाता है।

परंतु माता सावित्रीबाई ऐसे सभी पाखंडों से बिलकुल दूर थीं। पुरोहित समाज द्वारा किए जा रहे पूजा-पाठ और देवी-देवताओं से उन्हें कोई मतलव नहीं था। वह अक्सर कहा करती थीं। 'दो हजार सालों से शूद्रों-अतिशूद्रों को श्रेष्ठ (ब्राह्मण) लोगों ने *मनुस्मृति* कानून लागूकर शिक्षा ज्ञान सम्पत्ति से दूर रखा। इसीलिए विदेशियों ने आक्रमण करके इन तथाकथित श्रेष्ठ लोगों को जीत लिया। देश की बार-बार पराजय के लिए यह श्रेष्ठ लोग ही जिम्मेदार हैं। उनके सामने तो इन लोगों का पूजा-पाठ और पाखंड काम नहीं आया तो तुम्हारे किस काम आएगा। यह ज्ञान मुझे शिक्षा से ज्ञात हुआ है। जब तक हम यह नहीं समझ लेते कि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं, तब तक हम ईश्वर का सही रूप नहीं समझ पाएँगे। इससे अलग अपने को श्रेष्ठ मानना और दूसरों को नीच एवं अछूत मानना सबसे बड़ी मूर्खता है। यह ऊँच-नीच की व्यवस्था ईश्वरीकृत नहीं है। यह कुछ लोगों या यूँ कहें कि कुछ पाखंडी और धूर्त ब्राह्मण-पुरोहितों की चाल है। वह इसी कारण हमारी शिक्षा का विरोध करते हैं। *सत्यशोधक सम्मेलन* में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा, 'आप लोग अचमनी कटोरे को क्यों प्रणाम करते हो? महार-मातंगों को क्यों अछूत समझते हो? आपकी इसी मूर्खता के कारण आपकी जाति के बंधु ही ईसाई बन रहे हैं। महार-मातंगों को अछूत मानना

धर्म नहीं धर्म का अपमान है।' अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने इसी विचार को बताया भी है। माताजी की कविता है-

मन्नत

पत्थर पर सिंदूर पोतकर
उसे तेल में डुबोकर
जिसे समझ लिया जाता है देवता
वह असल में होता है एक पत्थर
मन्नत माँगते
काटते बकरा
करें हलाल
चढ़ावा चढ़ावें
पत्थरों पर
पुत्र का जन्म होने पर,

यदि पत्थर पूजने से मिलते बच्चे
तो फिर व्यर्थ में
नर-नारी क्यों रचाते हैं शादी?

निरक्षरता से लेखन तक

माता सावित्री का जीवन बहुत उतार-चढ़ाव से परिपूर्ण रहा। उन्होंने पढ़ाई की उम्र खत्म होने और विवाह होने के बाद पढ़ाई शुरू की। पढ़ाई शुरू हो गई तो वह अपने पति के साथ आगे बढ़ती गईं। बहुत तकलीफें आईं। यहाँ तक कि पिता ने ही फुले दम्पति को घर से निकाल दिया। उन्होंने काफी कुछ झेला। फुले दम्पति को कोई संतान नहीं थी। उन्होंने इसका भी दंश सहा। समाज की महिलाएँ भी आ गई कहने कि विधि-विरुद्ध काम करेगी तो बाँझ तो रहेगी ही। एक महिला के लिए इससे बड़ा सामाजिक अपमान और क्या हो सकता है? फिर भी वह रुकीं नहीं, डरी नहीं, कमजोर नहीं पड़ीं, झुकी नहीं, बढ़ती रहीं आगे एक-एक कदम। उन्होंने एक नहीं 18 विद्यालय खोले, कई किताबें लिखीं। महाराष्ट्र में माता सावित्री को नवीन कविता की जन्मदात्री (जननी) माना जाता है। उनकी प्रतिभा इस तरह की थी कि जिसे हम आज भी समझ नहीं पा रहे हैं इस इंटरनेट के युग में । उसे उन्होंने समझ लिया था 200 साल पहिले । क्या प्रज्ञा और क्षमता थी उनकी मेधा में ? हृदय नतमस्तक हो जाता है पढ़कर। एक उदाहरण उनकी कविता का

अँग्रेजी मैय्या

अँग्रेजी मैय्या, अँग्रेजी वाणी,
शूद्रों का उत्कर्ष करने वाली,
पूरे स्नेह से।

अँग्रेजी मैय्या,
अब नहीं है मुगलाई, और
नहीं बची है अब पेशवाई

मूर्खशाही।
अँग्रेजी मैय्या,
देती है सच्चा ज्ञान
शूद्रों को देती है जीवन,
वह भी बड़े प्रेम से।

अँग्रेजी मैय्या,
शूद्रों को पिलाती है दूध,
पालती है पोसती है,
माँ की ममता से।

अँग्रेजी मैय्या,
तूने तोड़ डाली जंज़ीरें
पशुता की,
और दी है भेंट,
मानवता की,
सारे शूद्र लोक को।

नायगाँव

नायगाँव है मेरी जन्मभूमि
मेरा गाँव
उसके हृदयस्पर्शी गीत और आख्यान कैसे सुनाऊँ

नायगाँव में है बंदर
और लोमाड़ियों का डेरा
रठ्ठ बना के लोगों ने फिर
गाँव बसाया है
उसके बाद
छत्रपति शिवाजी महाराज ने
कुर्मी मराठों का राज्य स्थापित किया

स्वराज बनाया लोकहित के लिए
नायगाँव कस्बा सुख-समृद्धि से भरपूर
बहुत ही अच्छी तरह संभाल रखा था
उसकी व्यवस्था को पाटिलों ने
जिसमें मेरा जन्म हुआ

बलि राजा

महाराज बलि महान
खेतिहर किसान दानी
मुझे जान पड़ता है मेरा गाँव
बलि राजा की राजधानी
उस महादानी योद्धा के सच्चे वारिस हैं
हम नहीं हैं रुआँसी सूरत वाले
यह जन्मभूमि कहती है मुझसे
फूल खिलाओ
मैं आज्ञाकारी फूलों की बौछार करती हूँ
अपनी मातृ-भूमि पर।

विधवाओं का कल्याण

जीने का अधिकार दिलाया

माता सावित्रीबाई ने माता फ़ातिमा शेख के सहयोग से *बाल शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह* की स्थापना की थी। यहीं से आधारशिला पड़ती है विधवा विवाह को मान्यता देने के आंदोलन की। मौत के मुँह में जाने से विधवाओं को तो बचा लिया अब इनका पुनर्वास कैसे हो? निश्चित रूप से विधवा विवाह ही इसका उपाय था। वर्ष 1829 में अंग्रेज सरकार ने सती प्रथा पर कानून बना कर रोक लगाई थी और विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दी थी। लेकिन एक मुश्किल थी। यह कानून तभी अमली जामा पहन सकता था। जब उसको सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती। सामाजिक स्वीकृति का यह कार्य राजाराम मोहन राव ने नहीं, माता सावित्रीबाई और राष्ट्रपिता ज्योतिराव ने मिल कर किया था। महाराष्ट्र में प्रथम विधवा विवाह माता सावित्रीबाई के प्रयासों से सम्पन्न कराया गया था जिसक पुरोहित समाज ने बहुत विरोध किया। लेकिन सावित्रीबाई ने यह कार्य तब किया जब वह विद्यालय खोल चुकी थीं और उनके विद्यालय चल निकले थे। इसी बीच उन्हें लहुजी साल्वे और दो उन लड़ाकों धोंडिबा कुम्भारे और धोंडीबा रोड़े का सहयोग मिल गया था जो उनकी हत्या करने आए थे। इन दोनों को जब यह मालूम हुआ कि फुले दम्पति तो हमारे ही बच्चों को शिक्षा-दीक्षा देने का पवित्र और महान कार्य कर रहे हैं, वह हथियार फेंक कर ज्योतिराव और सावित्रीबाई के साथ हो लिए। धोंडिबा कुम्भारे और धोंडीबा रोड़े के सहयोग के कारण किसी की हिम्मत नहीं हुई कि फुले दम्पति को उनका कार्य करने से कोई रोक पाता।

विधवा विवाह से जुड़ी एक आपराधिक प्रथा और भी थी। पति की मृत्यु के बाद यदि किसी तरह प्राण बच भी गए तो भी केवल प्राण ही बचे। उन्हें जीने का अधिकार नहीं था? केश मुंडन कर दिया जाता था। बाँसी-उच्छिष्ट भोजन दिया जाता था, वह भी सिर्फ उतना ही जिससे विधवाओं की केवल प्राण रक्षा हो सके।

उसे पूरी तरह बाबा-बाबू जो मालिक थे, के अनुसार ही जिंदा रहने का अधिकार था। सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यता, अशुभ, अपशकुन और अनिष्टकारी होना मुफ़्त में, किसी भी अशुभ के लिए सीधे जिम्मेदार बनाने का सम्पूर्ण अधिकार सुरक्षित था। अर्थात अधिकार का कोई मतलब ही नहीं। हम समझ सकते हैं कि इसका असर क्या हुआ होगा? पुरुषवर्चस्ववादी समाज को हर तरह के शोषण का पूरा अधिकार था। केश मुंडन का माता सावित्रीबाई ने विरोध किया। यह विरोध केवल अपने भाषणों से ही नहीं था वरन आंदोलन भी किए गए। उन्होंने पति ज्योतिराव की सहायता से नाई समाज के लोगों को इस प्रथा के विरुद्ध तैयार कर लिया। बात समझ आ जाने के बाद नाई समाज ने स्वयं विधवाओं के बाल काटने से इनकार कर दिया और यह प्रथा इस क्षेत्र से समाप्त हो गई।

यहाँ सवाल यह उठता है कि पुरोहित समाज ऐसे अच्छे कार्यों का विरोध क्यों करता था? पुरोहित समाज उस समय और आज भी अल्पसंख्यक है। इन पुरोहितों की संख्या लगभग 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है। ऐसे में उसे भली प्रकार मालूम है कि यदि सभी लोग पढ़ लिख गए तो इनकी सत्ता समाप्त हो जाएगी। यदि सभी ज्ञानी हो गए और तर्क करने लगे तो जवाब देना मुश्किल हो जाएगा। इसीलिए वह हर उस साधन का विरोध करते थे जो आधुनिकता की ओर ले जाता था। उसी का समर्थन करते थे जो समाज को अंधविश्वासी, पाखंडी और पिछड़ा ही बनाए रखता है। निश्चित रूप से 10 का शासन 90 पर तभी चल पाएगा जब 90 अनपढ़ और अशिक्षित होंगे। यही कारण था कि पुरोहित समाज पिछड़े समाज के विकास का तब भी विरोध करता था और आज भी करता है। बिना पढ़े सबको पास कर देने के पीछे भी यही तथ्य है। यही विधवा विवाह विरोध के बारे में भी था। महिलाओं में लैंगिक पवित्रता को प्राणों के भी अधिक कीमती बनाने के पीछे इस तरह की मानसिकता कार्य कर रही थी। जिसके सामने मानवता और मानव मूल्यों की कोई अहमियत नहीं। हो भी कैसे? जहाँ कानून बनाकर सीधे लूटमार होती हो वहाँ तर्क, प्रज्ञा, शुचिता कहाँ टिक सकती है। यह केवल हिंदू समाज में ही है। मुसलमानों में इस तरह की कोई प्रथा नहीं है। ईसाइयों में भी ऐसा नहीं है। इन समाजों में वर्ण व्यवस्था जैसी कोई चीज नहीं पाई जाती।

सबल प्रोत्साहन

सगुणाबाई क्षीरसागर

सगुणाबाई क्षीरसागर, ज्योतिराव की मौसेरी बहन थीं। दुर्योग से वह बहुत ही कम उम्र में विधवा हो गई थीं। ज्योतिराव की माता चिमना बाई की मृत्यु उस समय ही हो गई थी, जब वह एक साल से भी कम थे। पिता गोविंदराव के लिए बहुत बड़ी समस्या आ पड़ी थी कि ज्योतिराव का पालन पोषण कैसे हो। पति की असामयिक मृत्यु के बाद स्वाभिमानी सगुणाबाई ने जीवनयापन करने के लिए किसी पर बोझ न बनते हुए जॉन नामक मिशनरी अफसर के घर में आया (सेविका) की नौकरी करने लगीं। वहाँ उन्होंने अंग्रेजी वातावरण देखा और अंग्रेजी व देशी समाज में तर्क बुद्धि, प्रज्ञा एवं अंधानुकरण का फर्क देखा। ज्योतिराव की माता चिमनाबाई की मृत्यु के बाद पिता गोविंदराव के विशेष आग्रह पर, ज्योतिराव के पालन-पोषण की जिम्मेदारी सगुणाबाई ने अपने ऊपर ले ली और उनके साथ ही रहने लगीं। वहाँ रहते हुए भी उन्होंने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी और अपना कार्य निष्ठापूर्वक करती रहीं। मिशनरी अधिकारी के घर काम करने के कारण उन्हें अंग्रेजी का कुछ-कुछ ज्ञान हो गया था। वह इतनी प्रज्ञावान और कुशाग्र बुद्धि की चिंतक थीं कि ज्योतिराव को दोबारा स्कूल भेजने और सावित्रीबाई के शिक्षण कार्य में उनका बहुत बड़ा सहयोग रहता था। ज्योतिराव कुशाग्र बुद्धि के तो थे लेकिन सौभाग्यशाली इतने नहीं थे। उनके पिता पुरोहितों के चंगुल में अक्सर फँस जाया करते थे। इन्हीं के चंगुल में आकर उन्होंने ज्योतिराव की पढ़ाई बंद करा दी और खेती के काम में लगा दिया। यह माता सगुणाबाई की ही बुद्धिमानी थी कि अंग्रेज सज्जन लिजिट साहब और गफ़्फ़ार बेग मुंशी की सहायता से वह ज्योतिराव को पुनः विद्यालय भेजने में सफल हो पाईं। जनवरी 1843 से ज्योतिराव बुधवारवाड़ा के विद्यालय में जाने लगे। सगुणाबाई नौकरी भी करती थीं और ज्योतिराव तथा माता सावित्री को पढ़ाई के लिए हमेशा प्रेरित करती रहती थीं। यहाँ तक कि विद्यालयों को खोलने के लिए वह नौकरी से कमाए गए पैसे भी लगा देती थीं। संत चोखा मेला मंदिर परिसर में महार-मातंग, कुर्मी समाज की बालिकाओं के

लिए विद्यालय की स्थापना में पूरा पैसा माता सगुणाबाई का ही लगा था। धन्य है ऐसे हमारे पूर्वज। यह माता सगुणाबाई क्षीरसागर का ही योगदान ही था कि फुले दम्पति खुद पढ़ाई करने के बाद विद्यालय खोलकर देश के लिए शिक्षा के दरवाजे खोल सके। माता सगुणाबाई की उम्र अधिक नहीं थी। वह हैजा से पीड़ित हुईं और वर्ष 1854 में पूना में एक रिश्तेदार के घर पर उनका निधन हो गया। उनकी असामयिक मृत्यु ने फुले दम्पति की मुश्किलें बढ़ा दीं। अब घर में कोई ऐसा नहीं था जो पुरोहितों के षड्यंत्रों से उनके परिवार को बचा पता। अंततः पुरोहितों के भड़काने पर उनके पिता ने उन्हें घर से निकाल ही दिया। यदि माता सगुणाबाई इस समय जीवित होतीं तो कदाचित फुले दम्पति को इतने कष्ट न उठाने पड़ते।

सगुणाबाई क्षीरसागर के साथ माता सावित्रीबाई, फ़ातिमा शेख और विद्यार्थी

जीवन का सबसे बड़ा दुख

पति की मृत्य

माता सावित्री के जीवन के आधार स्तम्भ महात्मा ज्योतिराव सामाजिक कार्यों में इतने डूबे रहते थे कि उनके लिए भोजन, आहार-विहार एकदम गौड़ हो गया था। दिन-रात काम में ही लगे रहने के कारण वह अत्यंत कमजोर हो गए थे। जुलाई 1888 में उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उनके शरीर का दाहिना हिस्सा हल्के पक्षाघात का शिकार हो गया। यह माताजी के लिए अत्यंत दुखदायक घटना थी। विज्ञान उस समय उतना विकसित नहीं था। फलतः वह कहीं आ जा नही पाते थे। उनका जीवन जो अति सक्रिय था घर में ही सिमट कर रह गया था। परंतु उनका दिमाग सक्रिय रहता था। वह विश्राम करते हुए भी नई-नई योजनाएँ बनाते रहते थे और लोगों को प्रोत्साहित करते रहते थे। चूँकि उस समय का विज्ञान इतना आगे नहीं बढ़ पाया था। अतः उनके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो पाया और दो वर्ष तक अस्वास्थ्यता की स्थिति झेलने के बाद 28 नवम्बर, 1890 को उनका देहांत हो गया। माता सावित्रीवाई के लिए यह बहुत बड़ी चोट साबित हुयी।

परंतु माता सावित्रीवाई में संगठन की गजब की शक्ति थी। उनका भाषण इतना प्रभावशाली होता था कि हजारों की सभा के लिए उनकी उपस्थिति ही पर्याप्त होती थी। उनके शव्दों और आवाज में इतनी ताकत होती थी कि *सत्यशोधक आंदोलन* को महात्मा ज्योतिराव की कमी का एहसास नहीं हुआ और वह निरंतर प्रगति करता रहा। आज भी महाराष्ट्र में मनाया जाने वाला *गुड़ी पड़वा* उनका ही चलाया हुआ त्योहार है। रुकना तो मानो माताजी ने सीखा ही नहीं था वह थकी नहीं। पति के द्वारा छोड़े गए कार्य को निरंतर आगे बढ़ाती रहीं। *सत्यशोधक समाज* के कार्य को उन्होंने 1891 से 1897 तक बहुत सफलता से संचालित किया। वर्ष 1893 में सासवड (पूना) के अधिवेशन में उन्होंने कहा, 'संगठन व्यक्ति से ऊपर होता है। व्यक्ति और संगठन में यही फर्क होता है कि व्यक्ति के जीवन की सीमा

निश्चित है। संगठन के सामने यह सीमा नहीं होती है। अतः संगठन का कार्य रुकना नहीं चाहिए। सशक्त और क्रियाशील सामाजिक संगठन एक सशक्त समाज का द्योतक है।'

पति की बीमारी और अंततः उनके निधन जैसे दारुण दुख को झेलते हुए माताजी निरंतर आगे बढ़ती ही रहीं। हमारे लिए शिक्षा, प्रज्ञा, ज्ञान और विज्ञान के रास्ते खोलती रहीं। उनका पठन-पाठन, लेखन और सामाजिक कार्य रुका नहीं। उसे देशकाल की सीमाएँ भी रोक नहीं पाईं।

फुले दम्पति की प्रतिमा

विरोध! हत्या का प्रयास

महापुरुषों का इतना विरोध क्यों होता है?
वह शिक्षा ही तो दे रहे थे,
कोई चोरी-डाका
तो डाल नहीं रहे थे?
हाँ डाका डाल रहे थे?
डाका
पुरोहित समाज के
एकाधिकार पर!

पुरोहित समाज के पठन-पाठन के एकाधिकार में फुले दम्पति दीवार बन रहे थे। पुरोहिता का सामाजिक संगठन इतना शक्तिशाली था, जो आज भी है। दूसरे समाज का ज़रा भी फायदा हो जाए तो पुरोहित उसे बर्दाश्त नहीं करते (मंडल कमीशन का विरोध)। आज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है, जब शिक्षा पर रोक लगाने का नायाब तरीका ढूँढ लिया जाता है। आदेश होता है कि किसी को फेल न किया जाए। उसके साथ नकल रोकने के लिए तमाम व्यवस्था, पुलिस, मजिस्ट्रेट लगा दिए जाते हैं। जब किसी को फेल ही नहीं करना है तो नकल पर किस बात की रोक?

फुले दम्पति, समाज के लिए विद्यालय खोल कर पुरोहितों के एकाधिकार पर डाका डाल रहे थे। इतना विरोध कि उन्होंने बहुजन समाज के ही दो व्यक्तियों को कुछ रुपये दे कर फुले दम्पति की हत्या करने भेज दिया। धोंडीबा कुम्भारे और धोंडीबा रोड़े हथियार लेकर रात में फुले दम्पति के पास पहुँच गए। जब उन दोनों को मालूम हुआ कि यह दम्पति हमारे ही बच्चों के लिए स्कूल चलाते हैं

और पढ़ाते हैं, तो उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने हथियार फेंक कर माता सावित्री और ज्योतिराव के पाँव पकड़ लिए और कहा अब हम उन्हें नहीं छोड़ेंगे जिन्होंने हमें आपको मारने के लिए भेजा है। माता सावित्रीआई ने उन्हें रोका और कहा कि बदला से बदला कभी पूरा नहीं होता। उनसे बदला लेने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है समाज को शिक्षित करने के लिए कार्य करने की। यदि हमारा समाज शिक्षित हो गया तो उसे कोई बरगला नहीं पाएगा। यह विचार सुनकर वह दोनों फुले दम्पति के शिष्य हो गए। उनमें से एक धोंडिबा कुम्भारे तो पढ़ाई में इतना आगे बढ़ा कि उसने श्रृंगेरी के शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में कई बार हराया। शंकराचार्य को उसे शास्त्रार्थ में अजेय घोषित करना पड़ा। दूसरा शिष्य धोंडिबा रोड़े फुले दम्पति की सुरक्षा में लग गया। उसने कहा कि अब मेरा यहाँ से जाना ठीक नहीं है। वह लोग इतने शातिर हैं कि फिर किसी को भेजेंगे। जब हम यहाँ आस-पास रहेंगे तो किसी की कुछ गलत करने की हिम्मत नहीं पड़ेगी। वास्तव में इसके बाद किसी की हिम्मत नहीं हुई कि वह माता सावित्रीबाई पर हाथ उठा सके।

महामारी से संघर्ष

महापुरुषों का जीवन अपने आप में अजस्त्र ऊर्जा का भंडार होता है। रुकना, विश्राम करना और थक जाना तो माता सावित्रीबाई को आता ही नहीं था। उनका दिमाग इतनी तीव्रता से कार्य करता था कि वह रुक नहीं पातीं थीं। वर्ष 1867 के अकाल और उसके बाद वर्ष 1896 में प्लेग की महामारी के दौरान राहत कार्य में उनके *सत्यशोधक समाज* ने बहुत कार्य किया। 1867 के अकाल में बहुत से घर बरबाद हो गए। लोग गाँव छोड़ कर पलायन करने लगे। ऐसे में माता

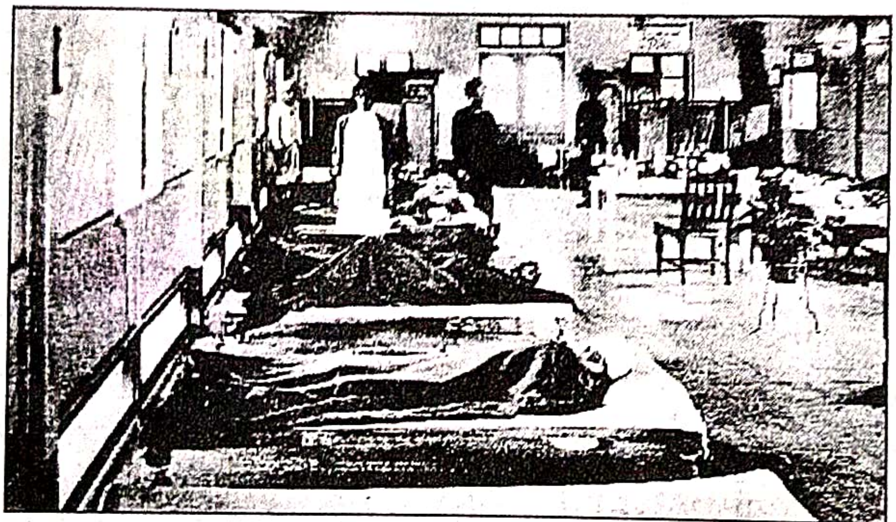

प्लेग के दौरान

सावित्रीबाई ने बड़े-बड़े लोगों और ज़मींदारों से मदद लेकर सामूहिक भोजनालय चलवाए। 2000 से अधिक कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए अस्थाई छात्रावास खोलकर उनकी सहायता की गई। कई अन्नगारों की स्थापना की, जहाँ से सस्ता अनाज मुहैया कराया जा सके। जैसा कि हम देखते हैं कि मौका मिलने पर देश के कतिपय दुष्ट लोग इसका फायदा उठाने में अर्थात आपदा में अवसर खोजते हुए इसका फ़ायदा उठाने में सबसे आगे हो लेते हैं। अनाज की जमाखोरी,

मुनाफाखोरी और औने-पौने दाम पर सम्पत्ति खरीदने में यह दुष्ट लोग लग जाते हैं। *सत्यशोधक समाज* ऐसे समय में ढाल बनकर खड़ा हुआ और बहुत लोगों के प्राण बचाए। इंसानों के लिए भोजन, पशुओं के लिए चारा आदि की व्यवस्था की। वर्ष 1896 में महाराष्ट्र में प्लेग फैल गया था। उस समय 'पेनिसिलिन' का अविष्कार नहीं हुआ था। अतः प्लेग भी कोरोना की तरह ही असाध्य था। इस बीमारी की भयावहता इतनी थी कि गाँव के गाँव बरबाद हो गए। कोरोना काल की तरह ही अमानवीयता फैली हुई थी। जहाँ संक्रमण के भय से कोई किसी की मदद करना तो दूर पास जाता भी नहीं था। उस समय तक महात्मा ज्योतिराव फुले का देहांत हो चुका था। अंग्रेज सरकार ने बहुत से प्लेग सहायता केंद्र खोल रखे थे। कोरोना काल की तरह अंग्रेज सरकार ने सरकारी अस्पताल नहीं बंद किए थे और जनता को भगवान भरोसे नहीं छोड़ा था। अंग्रेज सरकार की ओर से सारे चिकित्सा केंद्र खुले थे। वहाँ रोगियों को आइसोलेशन में रख कर इलाज किया जाता था। 1896 के प्लेग में माता सावित्रीबाई स्वयं रोगियों को अस्पताल पहुचातीं थीं। उनका बेटा यशवंत चिकित्सक था। उसके स्तर की परवाह न करते हुए रोगियों की सहायता में वह सीधे स्वयं लगी रहती थीं। इसी कार्य मे लगे हुए अंततः वह स्वयं प्लेग की चपेट में आ गईं और बच नहीं सकीं।

विद्याध्ययन और साहित्य सृजन

यह हमारे देश के प्रभु समाज के मुँह पर करारा तमाचा है कि जिस समाज को पढ़ने तक का अधिकार नहीं था। उसने कलम उठाई तो सारे परम्परागत विद्वानों को रौंदते हुए आधुनिक संविधान की रचना कर डाली। यह कहने की बात नहीं है कि ब्रिटिश सत्ता की समाप्ति के समय परम्परागत विद्वान समाज में इतनी कूवत नहीं थी कि वह अपने देश का विधान बना पाता। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि परम्परागत ब्राह्मण विद्वान सदियों से केवल इसी काम में लगे रहने के बावजूद इतने योग्य नहीं थे कि वह देश का विधान बना पाते।

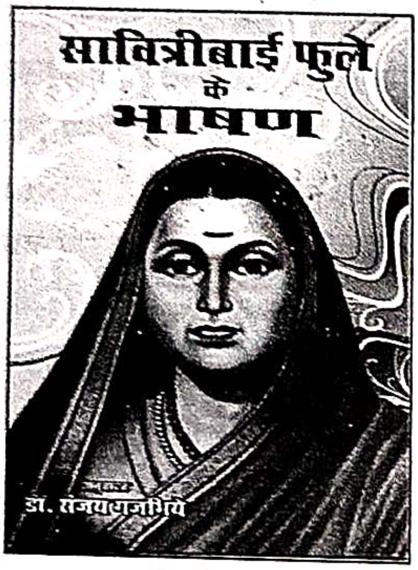

सावित्रीबाई फुले के भाषण पर डॉ. संजय गजभिये की अनुवादित पुस्तक

ऐसे ही माता सावित्रीबाई को भी पिता के घर पर शिक्षा नहीं मिली थी। विधान ही नहीं था! उनके पिता कमजोर नहीं थे। वह स्थानीय विवादों का निपटारा करते थे। कमजोर कैसे हो सकते थे? उस समय बेटियों की शिक्षा का रिवाज ही नहीं था। सामाजिक और सांस्कृतिक अत्याचार ही हमारी परम्परा और समृद्धि की निशानी थी। माताजी ने शिक्षा प्राप्त की, अपने पति से, खेत के किनारे, दोपहर के भोजनावकाश में, पेंड़ की टहनी से भूमि पर लिखकर। इस तरह अक्षरज्ञान प्राप्त कर वह एक बार आगे बढ़ीं तो पीछे मुड़ कर नहीं देखा। 18 विद्यालय खोले। समस्याएँ आईं, सहशिक्षा का भी आगाज़ किया। आठ पुस्तकों की रचना की लेकिन इसमें केवल छह ही उपलब्ध हैं जिसका विवरण निम्नवत है -

1. *काव्य फुले* (वर्ष 1854)

2. बावनकशी सुबोध रत्नाकर (1892)
3. मातुश्री सावित्रीबाईंचे भाषणे व विद्यादान
4. ज्योतिबांची भाषणे (सम्पादन)
5. सावित्री बाई के विविध विषयों पर प्रवचन
6. ज्योतिबा को लिखे गए पत्र

माता सावित्रीबाई बहुमुखी प्रतिभा की धनी थीं। जन्मजात विद्वान, नेता होने के साथ-साथ वह सफल कवयित्री भी थीं। उन्हें महाराष्ट्र में आधुनिक कविता का जनक माना जाता है। जिसमें भाव और मानवता प्रधान है। माताजी की दृष्टि इतनी पैनी थी कि उन्होंने उस समय वह देख लिया था जो हम आज भी देखने में संकुचा जाते हैं या अवॉइड कर जाते हैं। माता सावित्रीबाई की क्रांतिकारी कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

बावनकशी सुबोध रत्नाकर में वह पेशवाकालीन वर्णन में कहती हैं-

थूक फेंकने को गर्दन में पड़े बाँधनी हाँडी,
और पाँव के मिटे चिन्ह इसलिए कमर में झाड़ू।
दुपहरिया की तेज धूप में जब धरती तप जाए,
घर से घंटी बजा-बजा कर अतिशूद्र बहिराए।।

मर खप गए पेशवा,
अँग्रेज आ बसे।
विद्या के लिए,
मनु की थी मनाही।
अब वह मनाही न रही,
ज्ञानदाता अँग्रेज आ पहुँचे हैं।
विद्या ग्रहण कर लीजिए,
यह सुअवसर मिला नहीं था,
हजारों सालों से हमें।

महापरिनिर्वाण: एक युग का अंत

माता सावित्री के अंदर नेतृत्व की क्षमता स्वभावतः भरी हुए थी। वह प्रखर विद्वान, सफल नेत्री क्रांतिदर्शी कवयित्री, कुशल वक्ता और कभी न हार मानने वाली समाज सेवी थीं। उनके सामने जो भी समस्याएँ आईं, उनसे उन्होंने इस तरह मुकाबला किया कि वह हमारे लिए आदर्श बन गया। उन्हें शिक्षा मिली तो उन्होंने महिला होकर विद्यालय खोल दिए। उन्हें पढ़ने को मिला तो पुस्तकों की रचना कर दी। कमजोर और अछूतों का दर्द उन्होंने देखा तो वह भी अमर होकर उनकी कविताओं में छप गया। उनकी कविताएँ साफ-साफ कहती हैं कि शूद्रों और अतिशूद्रों को पढ़ने का अधिकार ही अंग्रेजों का दिया हुआ है। हमारी सनातन हिंदू व्यवस्था केवल ऊपर के तीन वर्गों के लिए ही बनी है। शूद्र आज भी तो कानूनी तौर पर पुरोहितों के नौकर से अधिक का महत्व नहीं रखते। हम देखते हैं कि प्रभु समाज डंके की चोट पर आज भी पिछड़ों, दलितों और महिलाओं का खुलेआम विरोध करता है। सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि दो शताब्दी पहले क्या हाल रहा होगा?

महामारी प्लेग के दौरान रोगियों के सेवा करते-करते वह स्वयं बीमारी की चपेट में आ गईं। बेटा यशवंत चिकित्सक था लेकिन वह भी उन्हें नहीं बचा सका। अंततः मानवता के लिए संघर्षरत रहते हुए 10 मार्च, 1897 को देश का सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांतिसूर्य अपने समय से पहले ही अस्त हो गया। उनके देहांत की ख़बर पूरे आग की तरह महाराष्ट्र में फैल गई। महाराष्ट्र में मातम छा गया। लाखों घरों में कई दिनों तक चूल्हा नहीं जला। पूना में भी मातम पसरा हुआ था। ऐसे लगता था कि सभी की माताजी का देहांत हो गया हो। लोग रो रहे थे। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इतनी जल्दी माता सावित्रीबाई उन्हें

अनाथ कर देंगी। निवास पर अंतिम दर्शन करने वालों की इतनी भीड़ लगी थी कि प्रशासन को पुलिस प्रबंध करना पड़ा था। घर से अंतिम यात्रा निकली तो वहाँ भी पुलिस प्रबंध से ही शव ले जाने को रास्ता मिल पाया। रास्ते में घंटों लग गए। हर मुहल्ले-गाँव के लोग उनके अंतिम दर्शन के लिए रोक लेते। इतनी शानदार अंतिम यात्रा विरलो को ही मिल पाती है। महाराष्ट्र के सभी नेताओं ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। बेटे यशवंत ने मुखाग्नि दी। माता सावित्रीबाई का पार्थिव शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया।

माता सावित्री बाई फुले का देहांत देश में एक युग की समाप्ति थी लेकिन उनके द्वारा दी गई सीख आज भी हमारा मार्गदर्शन करती है। जब कभी भी हमें कोई संशय हो माता सावित्रीबाई का जीवन चरित्र सही रास्ते पर लाने के लिए पर्याप्त है।

पुणे के गंजपेठ में राष्ट्रपिता महात्मा ज्योतिराव और माता सावित्रीबाई फुले की प्रतिमा

बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उ.प्र. (रजि.)

प्रकाशन द्वारा प्रकाशित (ISBN) एवं अन्य पुस्तकों की सूची

पुस्तक का नाम	लेखक/रचनाकार	मूल्य
1. जिन्दाबाद जेलखाना (रूबाइयों में)	डॉ. माता प्रसाद	70.00
2. सुराही (लघु कथा)	डॉ. पूरन सिंह	60.00
3. सामाजिक क्रांतिकारी प्रजापति संतराम बी.ए.	संकर्षण प्रजापति	70.00
4. कुम्हारों की मनोदशा	संकर्षण प्रजापति	80.00
5. महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग	डॉ. अमर सिंह	35.00
6. बोधिवृक्ष की छांव में	डॉ. अमर सिंह	35.00
7. कवि सुंदरलाल (कविता)	डॉ. अरविन्द कुमार	35.00
8. दुस्साहस (कविता)	डॉ. अरविन्द कुमार	80.00
9. यादों के झरोखे से (आत्मकथा)	डॉ. एम.डी. इंगोले	70.00
10. कछुआ सा सिमटा दलित (गजल संग्रह)	संतोष कुमार	50.00
11. जनवादी लेखक एवं इतिहासकार एस.के. पंजम	ज्ञानप्रकाश जखमी	30.00
12. सत्य ज्ञान अमर बोध	डॉ. अमर सिंह	30.00
13. राजनीति की पचसई	डॉ. माता प्रसाद	40.00
14. परिश्रम का चमत्कार (कविता)	हुब राज	50.00
15. धर्म परिवर्तन (नाटक)	डॉ. माताप्रसाद	50.00
16. राजनीति और दलित साहित्य के योद्धा डॉ. माता प्रसाद	ज्ञानप्रकाश जखमी	100.00
17. दीप शिखा (लघु कहानियाँ)	ज्ञानप्रकाश जखमी	40.00
18. पामाल हुए मालामाल (कविता)	सुनीता बौद्ध	40.00
19. पल्लव (लघु कहानी संग्रह)	पी.आर. अम्बेडकर	40.00
20. जख्मों से भरे जखमी	पी.आर. अम्बेडकर	30.00
21. सामान्य ज्ञान	हुब राज	30.00
22. आदि–वंश–कथा	डॉ. अंगनेलाल	25.00
23. लोकगीत अमृत	काशीप्रसाद जाटव	50.00
24. तिथियों के आईने में डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष	ज्ञानप्रकाश जखमी	30.00
25. धर्म शास्त्र और शूद्र	भिक्षु अमर ज्योति	15.00
26. झलकारी बाई रेडियो नाटक	माता प्रसाद	40.00
27. दास्ताने मछली शहर और गुलामी के दिन	माता प्रसाद	70.00
28. भदन्त ग. प्रज्ञानन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	ज्ञानप्रकाश जखमी	60.00
29. बोधिसत्व बाबासाहेब दुडे पत्रिकाओं में अम्बेडकरवादी विचारधारा	डॉ. पंडित बन्ने/ पी.आर अम्बेडकर	(P/B) 350.00 (H/B) 550.00
30. मा. कांशीराम की चिट्ठी	बुद्धेश्वर प्रसाद खुटियारे	70.00
31. मानवता के मसीहा बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जीवन दर्शन लेखक	इं.एन.के. गौतम /डॉ. बी.आर.बुद्धप्रिय	60.00
32. धम्मपथ प्रदर्शिका लेखक	इं.एन.के. गौतम /डॉ. बी.आर.बुद्धप्रिय	निःशुल्क
33. डॉ. माता प्रसाद की कहानी चित्रों की जुबानी	ज्ञानप्रकाश जखमी	1500.00
34. तिथियों के आइने में मा. कांशीराम का जीवन संघर्ष	ज्ञानप्रकाश जखमी	75.00
35. भारतीय संविधान (संक्षिप्त सार–संग्रह)	पी.आर. अम्बेडकर	50.00
36. चेतना के बीज,	जलेश्वरी गेंदले,	70.00
37. बुद्ध और उनका धम्म,	संपादक–प्रभु दयाल बंजारे	
38. बौद्ध संस्कार	नानक चन्द्र	110.00
39. आधी रोटी	हरि शरण गौतम	300 व 350
40. भीमायण	डॉ. जी.सी. भारद्वाज	–
41. भारतीय संविधान (संक्षिप्त सार–संग्रह सरल भाषा में)	इं. एन.के. गौतम / ज्ञानप्रकाश जखमी	50.00
42. भारतीय संविधान (संक्षिप्त परिचय)	इं. एन.के. गौतम / ज्ञानप्रकाश जखमी	15.00
43. आधुनिक बहुजन विभूतियाँ	पी.आर. अम्बेडकर	50.00
44. भगवान बुद्ध के मूल उपदेश	डॉ. डी.के. वर्मा	150.00
45. महान विभूतियों के विचार	नानक चन्द्र, आसना सिंह	100.00
46. बेसिक शिक्षा– तब और अब	नानक चन्द्र, आसना सिंह	100.00
47. बुद्ध और उनका धम्म	प्रभु दयाल बंजारे	–
48. संविधान ज्ञान	एड. राजाराम गौतम	60.00

अप्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक का नाम	लेखक/रचनाकार	मूल्य
1. भदंत भिक्खू बोधानंद महास्थविर का व्यक्तित्व व कृतित्व	नन्द किशोर सिद्धार्थ	50.00
2. अम्बेडकर नारी उत्थान (गीत)	डॉ. आर.आर. जैसवार	50.00
3. सामाजिक परिवर्तन के महानायक विद्रोही भगत सिंह	डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय सम्पादक इं.एन.के. गौतम	60.00
4. तिथियों के आइने में डॉ. अम्बेडकर का जीवन संघर्ष	ज्ञान प्रकाश जखमी	100.00
5. मल्लाह अपराध बनाम विकास	डॉ. देवी सिंह अशोक पूर्व IPS	250.00
6. दलित दृष्टिकोण आरक्षण में और...	डॉ. सतीश अम्बेडकर	125.00
7. संत गाडगे बाबा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	ज्ञानप्रकाश जखमी	60.00

मन्नत

पत्थर पर सिंदूर पोतकर
उसे तेल में डुबोकर
जिसे समझ लिया जाता है देवता
वह असल में होता है एक पत्थर
मन्नत माँगते
काटते बकरा
करें हलाल
चढ़ावा चढ़ावें
पत्थरों पर
पुत्र का जन्म होने पर,
यदि पत्थर पूजने से मिलते बच्चे
तो फिर व्यर्थ में
नर-नारी क्यों रचाते हैं शादी ?

माता सावित्री बाई फुले

सविता वर्मा का जन्म सन 1973 में ग्राम- साँथा जिला सिद्धार्थ नगर में हुआ। गोरखपुर विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद सिसऊर, अंदूपुर, जिला गोंडा के एडवोकेट नंदकिशोर वर्मा से विवाह हुआ। अध्ययन में रुचि होने के कारण इन्होंने वहुजन नायकों का गहन अध्ययन किया। माता सावित्री वाई फुले के जीवन से अत्यंत प्रभावित हुई। डॉ. डी. के. वर्मा के सम्पर्क में आने के बाद उनके साथ सामाजिक कार्यों में सहयोग करना शुरू किया। गाँव-गाँव जाकर महिलाओं को शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने का काम कर रही हैं। वर्तमान में माता सावित्री फाउण्डेशन, गोंडा के अध्यक्ष पद का दायित्व सम्भाले हुए हैं।

सम्पर्क : 09838891095, 09838072043

E-mail : savitaveema1973@gmail-com

माता सावित्री फाउण्डेशन
रानीडीह चौराहा
पो. खोराबार, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

आवरण सज्जा : सन्दीप सुल्तानपुरी
मूल्य रू 50/-

ज्ञानप्रकाश जखमी
प्रकाशक

प्रकाशन
बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसो0, उ0प्र0 (रजि.)
356/340/835 राजगार्डेन कॉलोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017
सम्पर्क सूत्र : 9415941920, Email : baks.gpjakhmi@gmail.com
www.bodhisatvababasahebtoday.in

978-93-95044-90-5